CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

॥ श्रीः ॥

विद्याभवन संस्कृत ग्रन्थमाला

६१

श्रीभर्तृहरिविरचितं

वैराग्यशतकम्

(हिन्दी-गद्य-पद्यानुवाद)

गद्यानुवादक—

जगन्नाथ शास्त्री होशिंग

पद्यानुवादक—

श्री राधेलाल त्रिवेदी

चौखम्बा विद्याभवन

वाराणसी २२१००१

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

॥ श्रीः ॥

विद्याभवन संस्कृत ग्रन्थमाला

६१

श्रीभर्तृहरिविरचितं

वैराग्यशतकम्

(हिन्दी-गद्य-पद्यानुवाद)

गद्यानुवादक—

जगन्नाथ शास्त्री होशिंग

पद्यानुवादक—

श्री राधेलाल त्रिवेदी

...wan's Sri Sankaracharya ...
832
Bharatiya ★ ...vidyalaya

चौखम्बा विद्याभवन

वाराणसी २२१००१

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रकाशक

चौखम्बा विद्याभवन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

चौक, (बनारस स्टेट बैंक भवन के पीछे)

पो० बा० नं० ६९

वाराणसी २२१००१

सर्वाधिकार सुरक्षित

भर्तृहरिशतकत्रयम्

(नीतिशतक–शृङ्गारशतक–वैराग्यशतक)

सरलसुबोध हिन्दीव्याख्या, पद्यानुवाद सहित

मूल्य १०–५०

पञ्चम संस्करण १९८२

मूल्य

अन्य प्राप्तिस्थान—

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा विक्रेता)

के० ३७/११७, गोपाल मन्दिर लेन

पो० बा० १२९

वाराणसी–२२१

Bhawan's Sri Sa... ...ya Sanskrit Mahavidyalaya

832

मुद्रक—

श्रीजी मुद्रणालय

वाराणसी

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्राक्कथन

प्रस्तुत ग्रन्थ योगीन्द्र महाराज भर्तृहरि कृत—सुभाषितत्रिशती—का तृतीय शतक 'वैराग्यशतक' है। इसमें उन्होंने १० दशकों में क्रम से निम्नलिखित विषयों पर सुललित पद्यों में विद्वतापूर्ण सूक्तियाँ कही हैं—

१–तृष्णा के दोष, २–विषय-परित्याग की आवश्यकता, ३–याच्ञा तथा दीनता के दोष, ४–भोगों की अस्थिरता, ५–काल की महिमा, ६–संन्यासी और राजा का संवाद, ७–मन को समझाना तथा उसको नियन्त्रित करना, ८–नित्य तथा अनित्य वस्तुओं का विचार ९–शिवजी की पूजा, १०–अवधूत पुरुषों के आचरण आदि।

यह शतक भारतवर्ष में सर्वत्र विद्वद्वर्ग में प्रचलित एवं आदृत है।

महाराज भर्तृहरि व्याकरण के अत्यन्त कठिन उच्चकोटि के 'वाक्यपदीय' नामक ग्रन्थ के कर्त्ता माने जाते हैं। ऐसी किंवदन्ती है कि परमसिद्ध गुरु गोरक्षनाथजी के यह शिष्य थे और उन्हीं से योगविद्या की शिक्षा लेकर उसकी साधना से ही अमर हो गये हैं। इन्हें लोग महाराज विक्रमादित्य का भाई भी मानते हैं।

अस्तु, हिन्दीभाषियों की सुविधा के लिए श्री जगन्नाथ शास्त्री होशिङ्ग जी ने इसकी हिन्दी व्याख्या की है तथा श्री राधेलाल त्रिवेदी ने हिन्दी पद्यों में भावानुवाद भी किया है, जिससे सर्वसाधारण भी इसके भावों को हृदयङ्गम कर शान्तिलाभ कर सकते हैं।

इसमें पुष्पचिह्न (❀) से अंकित श्लोकों को प्रक्षिप्त मानना चाहिए। मूल ग्रन्थ में इनका पाठ नहीं है किन्तु उपयुक्त समझकर उनका भी समावेश कर लिया गया है तथा उनका भी हिन्दी पद्यानुवाद एवं भावानुवाद कर दिया गया है।

यदि इससे जनता का कुछ भी उपकार हुआ तो प्रकाशक तथा सम्पादक अपने परिश्रम को सफल समझेंगे।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विषयानुक्रमणिका

श्लोक संख्या		पृष्ठ
१	ज्ञानस्वरूप शिवशंकर की जय हो	१
२	आशातृष्णा–तृष्णा की प्रवलता (१)	२
३	,, ,, (२)	,,
४	,, ,, (३)	३
५	अज्ञान–अविवेकी कर्म	,,
६	अज्ञान–अपनी चालवाजी के कारण तपों के फल न पा सके	४
७	आशातृष्णा—तृष्णा तो बूढ़ी न हुई हम ही वूढ़े हो गये	५
८	,, तृष्णा बुढ़ापे में तरुण होती है	,,
❀	,, तृष्णा का त्याग उचित है	६
९	,, आशा की प्रबलता	,,
१०	आशातृष्णा को त्याग कर योगीजन परमानन्द पाते हैं	७
११	परब्रह्म का ध्यान, पुण्यकर्मों के फल से भी भय है	८
१२	विषयों के भोगों को स्वयं त्याग करने में सुख है	,,
१३	ईश्वरोपासना—भोग की इच्छा का त्याग कठिन है	९
१४	ईश्वरोपासना—वे नर धन्य हैं जो एकान्त में परब्रह्मका ध्यान करते हैं	,,
१५	विषयों के भोग—त्याग कठिन है	१०
१६	नारी-शरीर का वास्तविक वर्णन–कवियों द्वारा उसकी झूठी प्रशंसा	,,
१७	काशीवास—शिवस्तुति	११
१८	अज्ञान—महामोह की महिमा	१२
१९	मिथ्या ज्ञान—विषयों में सुख की भ्रान्ति	,,
२०	अज्ञान—नाशवान धन वैभव का मोह	१३
२१	याच्ञा में विवशता—बाल-बच्चों के लिये माँगना पड़ता है	,,
२२	आत्मसम्मान–पेट विडम्बनाओं की जड़ है	१४
२३	आत्मसम्मान–समान कुलवालों में दीन होना अच्छा नहीं	१५

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्लोकसंख्या		पृष्ठ
२४	आत्मसम्मान—अपमानित जीवन से हिमालयवास श्रेष्ठ है। (१)	१५
२५	,, ,, ,, ,, (२)	१६
२६	,, ,, ,, ,, (३)	१७
२७	,, ,, ,, ,, (४)	,,
२८	आत्मसम्मान—तपस्या के समय अपमानित जीवन को हँस-हँस याद करेंगे	१८
२९	संतोष की महिमा—संतोषी पुरुष के लिये सोने का पहाड़ भी बेकार	,,
३०	संतोष—भिक्षाहार की प्रशंसा	१९
३१	वैराग्य—भयरहित केवल वैराग्य है	२०
३२	संसार के पदार्थ क्षणभंगुर हैं। वह कौन वस्तु है जो किसी से ग्रसित नहीं है	,,
३३	संसार के पदार्थ क्षणभंगुर हैं। कोई वस्तु स्थिर नहीं है	२१
३४	संसार के पदार्थ क्षणभंगुर हैं। लोकानुग्रह और ब्रह्मज्ञान करना उचित है	,,
३५	धैर्य समाधि—संसार निस्सार है ब्रह्मध्यान करना उचित है	२२
३६	परब्रह्म का ध्यान—भोगों का त्याग	२३
३७	वैराग्य—संसार में सुख कहाँ ?	२४
३८	वैराग्य—संसार निस्सार है। अहित आचरण से बचो	,,
३९	परब्रह्मका ध्यान—भोग क्षणभंगुर हैं	२५
❀	ईश्वरोपासना—तपस्वियों को धन्य है	,,
४०	परब्रह्म का ध्यान—ब्रह्मसुख महान् सुख है	२६
४१	काल की प्रबलता—सबके भक्षक काल को प्रणाम है	२७
४२	काल की प्रबलता—समर्थ कालपुरुष का खेल	,,
४३	अज्ञान—मोह-मदिरा का मद	२८
४४	अज्ञान—मोह का अन्धकार	२९
४५	व्यर्थ जीवन—संसार में जन्म लेकर योग अथवा भोग नहीं किया तो जीवन व्यर्थ गया	,,
४६	व्यर्थ जीवन—बिना विद्या, यश अथवा भोग के युवावस्था निष्फल है	३०
४७	व्यर्थ जीवन—विद्याहीन, माता-पिता की सेवा तथा योग से रहित जीवन व्यर्थ गया	३१

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्लोकसंख्या		पृष्ठ
४८	जीवन की अल्पता—मृत्यु अवश्यम्भावी है	३२
४९	जीवन की अल्पता—सुख का अभाव	,,
५०	संसार के पदार्थ क्षणभंगुर हैं—मनुष्य की अवस्थायें मृत्यु तक क्षण-क्षण बदलती रहती हैं	३३
५१	आत्मसम्मान—राजा और साधु के सम्मान में बराबरी (१)	३४
५२	,, ,, (२)	३५
५३	,, ,, (३)	,,
५४	वैराग्य—अभिमानी दुष्टों का त्याग	३६
५५	आत्मसम्मान—राजा और साधु के सम्मान में बराबरी (४)	,,
५६	अपने को राजदर्शन के अयोग्य बताने के व्याज से राजा की निन्दा	३७
५७	आत्मसम्मान—छोटे-छोटे धनिकों के अभिमान का कोई कारण नहीं (५)	,,
५८	आत्मसम्मान—पृथ्वी का मालिक बनकर घमण्ड नहीं, विषाद करना चाहिए (६)	३८
५९	आत्मसम्मान—पृथ्वी का मालिक बनकर घमण्ड नहीं, विषाद करना चाहिये (७)	३९
६०	आत्मसम्मान—अभिमान की निन्दा (८)	,,
६१	परब्रह्म का ध्यान—दूसरों के मन में घुसने के बजाय अपने मन में घुसो	४०
**	वैराग्य—तपस्या ही में सुख है	४१
६२	धैर्य, समाधि—चिन्ता का त्याग (१)	,,
६३	धैर्य, समाधि—शान्तभाव की प्रशंसा (२)	४२
६४	अज्ञान—मोह को त्यागकर शिवचरणों में प्रीति करो	,,
६५	काशीवास—लक्ष्मी का तिरस्कार	४३
६६	धैर्य समाधि—यदि उच्चश्रेणी के भोग प्राप्त नहीं हैं तो उनको त्याग योग में स्थित होना उचित है (३)	४४
६७	ईश्वरोपासना—वैभव और लक्ष्मी से क्या ? विना ब्रह्मज्ञान सब व्यर्थ है	,,
६८	वैराग्य—कामादि विकार से रहित निर्जन वन में शिव की भक्ति चाहते हैं	४५

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्लोकसंख्या	पृष्ठ
६९ परब्रह्म का ध्यान—ब्रह्मसुख की प्राप्ति (१)	४६
७० परब्रह्म का ध्यान—ब्रह्मानन्द देता है (२)	,,
७१ परब्रह्म का ध्यान—ब्रह्मानन्द में प्रवेश किये बिना विद्या और कर्म निष्फल हैं (३)	४७
❀ काशीवास—धनियों के तिरस्कार से बचने लिए	४८
७२ शरीर की क्षणभंगुरता	,,
७३ काल की प्रबलता—बुढ़ापे में दुर्गति	४९
७४ तरुणियाँ बूढ़ों को दूर से ही छोड़ देती हैं	५०
७५ ईश्वरोपासना—निरोग और स्वस्थ रहते अपने कल्याण के लिए यत्न कर लेना चाहिये	
७६ जीवन की अल्पता—अल्प आयु में क्या किया जाय	५१
७७ परब्रह्म का ध्यान—ज्ञानवान को केवल तपस्या ही कल्याणकारी है	५२
७८ वैराग्य—सांसारिक भोग नष्ट होने पर गङ्गा किनारे कुटी में निवास करना उचित है (१)	,,
७९ वैराग्य—संसार की अनित्यता ध्यान आते ही सुन्दर वस्तुओं से रुचि हट जाती है (२)	५३
८० वैराग्य—भोगादिक को चंचल जान राजमहल त्याग वन को चले आये	५४
८१ वैराग्य—जब तक अभिमान है अन्तःकरण वश में नहीं रह सकता (४)	,,
८२ वैराग्य—पूर्व तप का फल है	५५
८३ काशीवास—निराशा में शिवचरणों का ही आसरा है (१)	५३
८४ काशीवास—शिवजी के चरणकमल में मेरी भक्ति हो (२)	,,
८५ काशीवास—हम कब गङ्गाद्वीप पर, एकान्त में, शिव-शिव रटते हुए आनन्दित होंगे (३)	५७
❀ काशीवास—राजर्षि भर्तृहरिजी की इच्छा (४)	,,
८६ काशीवास—मैं किस दिन अकिंचन हो रात्रि भर शिवचरणों का ध्यान करूँगा (५)	५८
८७ काशीवास—कब हम काशीजी में शिवभजन करते हुए दिन काटेंगे (६)	,,

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्लोक संख्या		पृष्ठ
❀	काशीवास–घोर तप करने के लिये (७)	५९
८८	काशीवास–मैं कब एकान्त में स्थित हो शिवजी की पूजा व ध्यान में मन लगाऊँगा और धनियों की सेवा के दुःख से छूटूँगा (८)	६०
८९	काशीवास–कब हम कर्मों की जड़ उखाड़ने में समर्थ होंगे ? (९)	,,
९०	काशीवास–शिवजी के प्रसाद से योगियों को ब्रह्मसुख सुलभ है (१०)	६१
९१	काशीवास–यदि योगमहोत्सव में चित्त स्थित है तो तीन लोक का राज्य किस काम का ? (११)	६२
९२	संतोष–संतोषी को लोभ नहीं (१)	,,
९३	संतोष–निस्पृह विरक्तों के लिये लक्ष्मी किस काम की ? (२)	६३
९४	काशीवास–शान्त पुरुष अपनी वैराग्य रूपी स्त्री के साथ राजाओं के समान सुख से सोते हैं (१२)	,,
९५	काशीवास–तपस्वी का रहन-सहन (१३)	६४
९६	काशीवास–योगी जन किसी के अनुपयुक्त कहने पर हर्ष अथवा रोष नहीं करते (१४)	६५
९७	आत्मानुसन्धान करते हुए जीवन बिताना उचित है	,,
९८	परब्रह्म का ध्यान–कब हम गंगातट पर हिमालय की कन्दरा में	
❀	ब्रह्मज्ञान के अभ्यास में योगनिद्रा को प्राप्त होंगे (१)	६६
❀	परब्रह्मज्ञान का ध्यान–यदि परमात्मा की ज्योति से हृदय प्रकाशित नहीं हुआ तो सारा वैभव व्यर्थ है (२)	६७
९९	परब्रह्म का ध्यान– विरक्त पुरुषों का जीवन धन्य है (३)	,,
❀	परब्रह्म का ध्यान–ब्रह्मसुख के आगे तीनों लोकों का राज्य फीका है	६८
१००	परब्रह्म का ध्यान–निर्मल ज्ञान से मोह की महिमा दूर हुई, अब हम परब्रह्म में प्रवेश कर रहे हैं (५)	६९
❀	परब्रह्म का ध्यान–ज्ञानवान पुरुष ईश्वर तुल्य है (६)	,,
❀	परब्रह्म का ध्यान–योगी का कुटुम्ब और भय-रहित जीवन (७)	७०
❀	परब्रह्म का ध्यान– मेरे दिन भोग अथवा योग में शिव-शिव कहते व्यतीत हों (८)	७१

—:०:—

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

॥ श्रीः ॥

वैराग्यशतकम्

(मङ्गलाचरण)

चूडोत्तंसितचन्द्रचारुकलिका-चञ्चच्छिखाभास्वरो
लीलादग्धविलोलकामशलभः श्रेयोदशाग्रे स्फुरन् ।
अन्तःस्फूर्जदपारमोहतिमिरप्राग्भारमुच्चाटयन्
श्वेतःसद्मनि योगिनां विजयते ज्ञानप्रदीपो हरः ॥१॥

१—ज्ञान स्वरूप शिवशङ्कर की जय हो

छप्पय

चन्द्र बनाया भूषण शिर का, कला मनोहर करे प्रकाश ।
मर्यादा हित काम जलाया, भक्तों को नहिं किया निराश ॥
ज्ञान दीप हो योगिजनों के उर-अन्तर में रहते हैं ।
अन्तःकरण भरे मोहादिक अन्धकार तम हरते हैं ॥
ज्योति महा प्रगटा रहे, बाँह दीन आरत गहो ।
चरणों में मन ध्यान धर, जय जय शिव शङ्कर कहो ॥

मस्तक पर भूषणस्वरूप प्रतीत होनेवाले चन्द्रमा की सुन्दर कला के समान चमकनेवाली शिखा से प्रकाशमान, खेल में ही चंचल कामरूपी शलभ (फतिंगा) को भस्म करनेवाले, कल्याणकारी दशा (वर्ति) के अग्रभाग में प्रकाशमान हृदय में व्याप्त अपार मोह रूपी अन्धकार का उच्छेदन करने वाले, ज्ञानरूपी दीपक, श्री शिवजी योगियों के हृदय मन्दिर में विराजते हैं ॥ १ ॥

(तृष्णादूषण)

भ्रान्तं देशमनेकदुर्गविषमं प्राप्तं न किञ्चित् फलं
त्यक्त्वा जातिकुलाभिमानमुचितं सेवा कृता निष्फला ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भुक्तं मानविवर्जितं परगृहेष्वाशङ्कया काकवत्
तृष्णे जृम्भसि पापकर्मपिशुने नाद्यापि सन्तुष्यसि ॥२॥

२—आशा तृष्णा—तृष्णा की प्रबलता (१)

घोर दुर्ग अरु देश बहुतसे-घूमे, कुछ नहिं प्राप्त किया।
वंश, जाति-मर्यादा तजिकर, निष्फल सेवा भार लिया॥
भय में भोजन किया काकवत्, जा पर गृह तजि करके मान।
नहीं छोड़ती अब भी तृष्णे, बाकी कौन रहा अरमान ?॥

अनेक प्रकार के जल, वृक्ष, पर्वत आदि दुर्गों (किलों) के कारण प्रवेश करने में कठिन देशों (स्थानों) का मैंने भ्रमण किया, पर कुछ भी फल नहीं पाया। योग्य जाति और कुल का अभिमान छोड़कर धनी लोगों की निष्फल सेवा की। दूसरों के घरों पर विना सम्मान के लोलुपतावश काक के समान भोजन किया। बुरे कर्मों में प्रवर्तन करनेवाली हे तृष्णे ! तुम और भी बढ़ रही। अभी भी शान्त नहीं हो रही हो।

उत्खातं निधिशङ्कया क्षितितलं ध्माता गिरेर्धातवो
निस्तीर्णः सरितां पतिर्नृपतयो यत्नेन सन्तोषिताः।
मन्त्राराधनतत्परेण मनसा नीताः श्मशाने निशाः
प्राप्तः काणवराटकोऽपि न मया तृष्णे ! सकामा भव ॥३॥

३—आशा तृष्णा—तृष्णा की प्रबलता (२)

गहरे गहरे गड्ढे खोदे, गड़े खजाने पाने को।
गिरि से लाकर धातें फूंकीं, उनसे लाभ कमाने को॥
कर समुद्र को पार, भूमिपति यत्नों से सन्तुष्ट किये।
जाकर रात मसान जगाये, मंत्रसिद्धि का लक्ष्य लिये॥
कानी कौड़ी तक कभी, लगी न अपने हाथ।
तृष्णे तेरी जय रही, तुझे नवाते माथ॥

यहाँ खजाना (गड़ा हुआ द्रव्य) मिलेगा, इस आशा से भूमि को खना, मैनसिल आदि पहाड़ों की धातुओं को आग में रखकर फूंका, समुद्र को पार किया, बड़े परिश्रम से राजा आदि श्रीमानों को सन्तुष्ट किया, सिद्धिप्रदायक

Funding by IKS-MoE

मन्त्रों की उपासना में तत्पर मन के द्वारा श्मशान में भी कितनी निशाएँ विताई, पर ऐ चाह (लालच) ! मैंने फूटी (कानी) कोड़ी भी न पाई। इसलिए तुम सफल या प्रसन्न हो जाओ ॥ ३ ॥

खलालापाः सोढाः कथमपि तदाराधनपरै-
र्निगृह्यान्तर्बाष्पं हसितमपि शून्येन मनसा ।
कृतो वित्तस्तम्भप्रतिहतधियामञ्जलिरपि
त्वमाशे ! मोघाशे ! किमपरमतो नर्तयसि माम् ॥४॥

४—आशा तृष्णा—तृष्णा की प्रबलता

हुए शान्त कटुवचन दुष्ट सुन, बोले फिर अहसान मना।
रोक आँसुओं को आँखों में, हँसे शून्य-मन बात बना॥
धन-मदमाते नीच नरों के, धीरज धरकर जोड़े हाथ।
आशा तू क्यों घेर रही है, नचा रही क्यों अपने साथ ?

उनकी सेवा में लगे हुए हम लोगों ने दुर्जनों के दुर्वचन अत्यन्त कष्ट से सहे, कारण वैसा न करने पर अपने काम का नाश होगा—इस भय से सहन किये। आँसुओं को मन के भीतर दवाकर अर्थात् आँसुओं के घूँट पीकर सूने मन से हम हँसे भी। धन के कारण जड़ और कर्तव्यविमुख बुद्धिवालों को हाथ भी जोड़े अर्थात् प्रणाम भी किया। ऐ व्यर्थ आशावाली तृष्णे ! इससे बढ़कर मुझे और क्यों नचा रही हो। इतना सताना बस हुआ, अब मत सताओ ॥ ४ ॥

अमीषां प्राणानां तुलितबिसिनीपत्रपयसां
कृते किं नास्माभिर्विगलितविवेकैर्व्यवसितम् ।
यदाढ्यानामग्रे द्रविणमदनिस्संज्ञमनसां
कृतं मानव्रीडैर्निजगुणकथापातकमपि ॥५॥

५—अज्ञान—अविवेकी कर्म।

चंचल जल ज्यों कमलपत्र पर, तैसे विचलित रहते प्राण।
क्या-क्या किया विवेक त्याग कर, जिससे हो इनका कल्याण॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बद्धि हरी धन मद ने जिनकी, जाकर तिनके पास कभी ।
किया पाप निज गुण बखान कर, बना सुखागर कुटिल सभी ॥

कमल के पत्ते पर पड़े हुए जल के समान क्षणभंगुर इन अविश्वसनीय प्राणों की रक्षा के लिए विवेकहीन हम लोगों ने क्या नहीं किया ? किन्तु सभी अनुचित कार्य किये । क्योंकि धन के नशे में असावधान चित्तवाले श्रीमानों के सामने निर्लज्ज होते हुए गुणों की कथा (कथन) रूप पातक भी किया ॥ ५ ॥

क्षान्तं न क्षमया गृहोचितसुखं त्यक्तं न सन्तोषत-
स्सोढो दुस्सहशीततापपवनक्लेशो न तप्तं तपः ।
ध्यातं वित्तमहर्निशं नियमितप्राणैर्न शम्भोः पदं
तत्तत्कर्म कृतं यदेव मुनिभिस्तैस्तैः फलैर्वञ्चिताः ॥६॥

६—अज्ञान—अपनी चालबाजी के कारण तपों के फल न पा सके ।
क्षमा बखानी करी न धारण, तजा न गृह-सुख कर संतोष ।
शीत वात अरु घाम सहे, पर किया न कुछ तप, तजा न रोष ॥
त्याग अर्थ चिन्ता, संयम कर, शिव-सेवा मन नहिं लाये ।
किये कर्म तो मुनियों के से, तप-फल हाथ नहीं आये ॥

जो-जो कर्म मुनियों से किया जाता है, वह-वह कर्म हमने भी किया, किन्तु मुनिलभ्य उन-उन फलों से हम वञ्चित रहे । जैसे—अपमान का कारण रहते हुए भी सहन कर चित्त में दुःख न उत्पन्न न होने देना—ऐसी क्षमा से नहीं सहन किया किन्तु असमर्थता के कारण सहन किया । घर में उचित भोजनादि-सुख स्वेच्छा से नहीं छोड़ा अपितु वैसा कर नहीं सकते इसलिये छोड़ा । तपस्या के लिये दुस्सह शीत, ताप और पवन नहीं सहे किन्तु जीविका के लिये देशान्तर घूमने में ये सब सहे । पर तपश्चरण नहीं किया । अपने प्राणों को बंधन (वश) में रखकर रात-दिन शिवजी के चरणों का ध्यान नहीं किया परन्तु केवल कर्म का ही ध्यान रखा । अतः मुनियों से प्राप्य वस्तु नहीं पाई ॥ ६ ॥

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्तास्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः ।
कालो न यातो वयमेव यातास्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः ॥७॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

७–आशा तृष्णा–तृष्णा तो बूढ़ी न हुई हम ही बूढ़े हो गये।
भोगों को क्या भोगा हमने, भोग हमें भुगताय गये।
तपते रहे तपों को हम क्या, तप ही हमको ताय गये॥
रहे सोचते काल काट लें, काल हमें ही काट गया।
तृष्णा तू तो हुई न बूढ़ी, हमें बुढ़ापा चाट गया॥

माला, चानन आदि सांसारिक वस्तुओं का उपभोग नहीं कर पाये किन्तु उनको पाने की दुश्चिन्ता से हमी लोग ग्रसे गये। तपश्चरण नहीं किया किन्तु आध्यात्मिक आदि त्रिविध चिन्ता से हम लोग ही तपे अर्थात् हमने कष्ट सहे। सज्जन लोगों के साथ सहवास, सदाचरण आदि द्वारा समय नहीं गया किन्तु हम लोग ही सांसारिक वस्तु की प्राप्ति की चिन्ता में बड़े-बूढ़े हो गये। इसी प्रकार आशा जीर्ण नहीं हुई किन्तु हम ही शिथिल हो गये अर्थात् अब किसी काम के न रहे॥ ७॥

बलिरभिमुखमाक्रान्तं पलितेनाङ्कित ? शिरः।
गात्राणि शिथिलायन्ते तृष्णैका तरुणायते॥ ८॥

८—आशा तृष्णा—तृष्णा बुढ़ापे में तरुण होती है।
पड़ी झुरियाँ मुख के ऊपर, बाल सफेदी सिर आई।
हुए शिथिल हैं अङ्ग-अङ्ग, पर तृष्णा तरुणाई छाई॥

वलियों अर्थात् वार्धक्य के कारण पड़नेवाली झुरियों ने मुख को चारों ओर से घेर लिया, बुढ़ापे की सफेदी ने सिर को चिह्नित किया अर्थात् मस्तक के सभी केश श्वेत हो गये, हाथ पैर आदि देह के अवयव ढीले हो रहे हैं। परन्तु एक आशा ही तरुणी के समान बलिष्ठ हो रही है। सब कुछ अस्त-व्यस्त हो जाने पर भी आशा कभी भी छूटती नहीं॥ ८॥

***विवेकव्याकोशे विदधति शमे शाम्यति तृषा**
परिष्वंगे तुंगे प्रसरतितरां सा परिणता।
जराजीर्णैश्वर्य्यग्रसनगहनाक्षेपकृपण-
स्तृषापात्रं यस्यां भवति मरुतामप्यधिपतिः॥

---

* इस चिन्ह से अंकित श्लोकों को सर्वत्र प्रक्षिप्त समझना चाहिए।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आशा तृष्णा—तृष्णा का त्याग उचित है।

ज्ञान ज्योति से शान्ति प्रगट हो, तृष्णा दूर भगाती है।
नहिं तो विषयों का सँग पाकर, दिन-दिन बढ़ती जाती है ॥
तृष्णा ही से इन्द्र देवपति, महाशिथिल बन जाते हैं।
जरा-जीर्ण ऐश्वर्य-भोग से, खुद को बचा न पाते हैं ॥

विवेक से प्रकठ होने से शम (शान्ति) होने पर विषयों को भोगने की तृष्णा शान्त हो जाती है। नहीं तो विषयों का अत्यधिक प्रसङ्ग होने से वह (भोगतृष्णा) बलवती होकर बढ़ती जाती है। जिससे (देवताओं के राजा इन्द्र) भी जरा (वृद्धावस्था) से क्षीण एवं ऐश्वर्य-प्राप्ति के अभिलाषी होने से देवपति होकर तृष्णा के पात्र वने रहते हैं अर्थात् उनकी भी भोग तृष्णा वनी रहती है।

निवृत्ता भोगेच्छा पुरुषबहुमानोऽपि गलित-
स्समानाः स्वर्याताः सपदि सुहृदो जीवितसमाः।
शनैर्यष्टयुत्थानं घनतिमिररुद्धे च नयने
अहो मूढः कायस्तदपि मरणापायचकितः ॥९॥

९—आशा तृष्णा—आशा की प्रवलता।

भोग-वासना शान्त हुई, सम्मान घटा जग में अपना।
समवयस्क चल बसे, मित्रगण कठिन पा रहे हैं रहना ॥
टेक लगा धीरे उठ पाते, बढ़े धुन्ध मृग हरने को।
फिर भी हाय! शरीर मूढ़ ये, चौंक उठे सुन मरने को ॥

सांसारिक पदार्थों की इच्छा चली गई। पुरुषों में जो वहुत सम्मान पहिले था वह भी कम हुआ, बरावरी की अवस्थावाले प्राणतुल्य मित्र भी शीघ्र ही दुरवस्था भोगने के पूर्व ही स्वर्ग को सिधार गये। लाठी के सहारे अव धीरे-धीरे उठ पाते हैं, वहुत ही अँधियारा (रोग विशेष) से न देख सकनेवाली दोनों आँखें हो गई अर्थात् हम लँगड़े और अन्धे हो गये, परन्तु ज्ञानहीन शरीर फिर भी मृत्युरूप नाश से भीत है अर्थात् फिर भी जीने की इच्छा शरीर को है—यह आश्चर्यकी बात है ॥ ९ ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आशा नाम नदी मनोरथजला तृष्णातरङ्गाकुला
राग्राहवती वितर्कविहगा धैर्यद्रुमध्वंसिनी ।
मोहावर्तसुदुस्तराऽतिगहना प्रोत्तुङ्गचिन्तातटी
तस्याः परगता विशुद्धमलसो नन्दन्ति योगीश्वराः ॥१०॥

१०—आशा-तृष्णा को त्याग कर योगीजन परमानन्द पाते हैं ।
आशा नदी, मनोरथ जल है, तृष्णा की क्या उठे तरंग ।
मगर राग के, खग वितर्क के, धीरज द्रुम को करें अपंग ॥
भँवर मोह का पड़ता दुस्तर कूल नदी चिन्ता के बन्ध ।
पार जायँ योगी विशुद्ध हिय, तब पाते हैं परमानन्द ॥

अच्छा खान-पान-विहार आदि मानसिक इच्छारूप जलवाली, अप्राप्य वस्तु की प्राप्तीच्छारूप तृष्णा की तरंगों से पूर्ण, अभीष्ट पदार्थ का प्रेमरूप राग और द्वेष आदि नक्र (नाक, मगर) वाली, 'अमुक वस्तु कब कैसे मिलेगी' इत्यादि विचाररूप जलपक्षियों से भरी, धैर्यरूप वृक्षों को उखाड़ फेंकनेवाली, अज्ञान वृत्ति दंभ-दर्परूप आवर्त (पानी के घूमने से नाद की तरह होनेवाला भौंरा) से पार पाने में कठिनाई वाली, अत्यन्त गहरी बढ़ी हुई, ऊँची-ऊँची चिन्ता रूप तटवाली, इस संसार में एक आशानामक नदी है जिससे पार होना बहुत ही दुर्लभ है । किन्तु शुद्धान्तःकरण महान् योगिराज उस नदी के पार रोकर ब्रह्मानन्द में लीन होकर आनन्दित होते हैं । अतएव आशा का त्याग सर्वापेक्षया श्रेयस्कर है ॥ १० ॥

(विषय-त्याग-विडम्बना)

न संसारोत्पन्नं चरितमनुपश्यामि कुशलं
विपाकः पुण्यानां जनयति भयं मे विमृशतः ।
महद्भिः पुण्यौघैश्चिरपरिगृहीताश्च विषया
महान्तो जायन्ते व्यसनमिव दातुं विषयिणाम् ॥११॥

११—परब्रह्म का ध्यान-पुण्यकर्मों के फल से भी भय है ।
सांसारिक कामों में अपनी कुशल नहीं मैं पाता हूँ ।
पुण्यों के फल मन विचार कर उनसे भी भय खाता हूँ ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कारण महापुण्य संचय से मिलते जग में भोग महान।
अन्त समय जो विषयी जन को दुःख देते हैं विषय समान॥

इस संसार में फल-कामना से किये हुए पुण्य कर्म को श्रेयस्कर मैं नहीं समझ रहा हूँ। क्योंकि सत्कर्मों के परिणाम को सोचते हुए मुझे भय उत्पन्न होता है कि कृतपुण्यकर्मों के फलस्वरूप स्वर्गादि का उपभोग करने से पुण्य क्षीण होने पर फिर भी विपत्तियों का सामना करना पड़ेगा। अत्यधिक पुण्यकर्मों के आचरण से प्राप्त महान् विषय (उपभोगयोग्य पदार्थ) विषयासक्त पुरुषों को विपत्ति देने के लिए ही उत्पन्न हुआ करते हैं॥ ११॥

अवश्यं यातारश्चिरतरमुषित्वापि विषया
वियोगे को भेदस्त्यजति न जनो यत्स्वयममून्।
व्रजन्तः स्वातन्त्र्यादतुलपरितापाय मनसः
स्वयं त्यक्ता ह्येते शमसुखमनन्तं विदधति॥ १२॥

१२—विषयों के भोगों को स्वयं त्याग करने में सुख है।

वो भोगे हैं विषय बहुत दिन, अवशि अन्त वह छोड़ेंगे।
क्या कारण हम स्वयं न त्यागें वह निश्चय मुख मोड़ेंगे॥
देंगे अति सन्ताप हृदय को, छोड़ हमें जब जावेंगें।
पर यदि हम ही उनको त्यागें, परम शान्ति चित पावेंगे॥

ये सांसारिक विषय बहुत कुछ दिनों तक रहकर भी अवश्य ही चले जायेंगे अर्थात् एक दिन हमको छोड़ देंगे। उन्होंने हमको या हमने उनको छोड़ा तो उसमें क्या भेद (अन्तर) हैं ? अर्थात् कुछ नहीं, दोनों समान हैं। फिर भला सज्जन लोग उनको स्वयं क्यों नहीं त्यागते। क्योंकि स्वयं पुरुषों द्वारा छोड़े गये ये विषय अनन्त शान्ति-सुख करने वाले हैं। इनको स्वयं छोड़ देने से अत्यन्त शान्ति और सुख प्राप्त होता है। अतः इन्हें स्वयं त्यागना उचित है॥ १२॥

ब्रह्मज्ञानविवेकनिर्मलधियः कुर्वन्त्यहो दुष्करं
यन्मुञ्चन्त्युपभोग भाञ्ज्यपि धनान्येकान्ततो निःस्पृहाः।
सम्प्राप्तान्न पुरा न सम्प्रति न च प्राप्तौ दृढप्रत्ययान्
वाञ्छामात्रपरिग्रहानपि परं त्यक्तुं न शक्ता वयम्॥ १३॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भोगा भङ्गुरवृत्तयो बहुविधास्तैरेव चायं भव-
स्तत्कस्येह कृते परिभ्रमत रे लोकाः कृतं चेष्टतैः ।
आशापाशशतापशान्तिविशदं चेतस्समाधीयतां
कामोत्पत्तिवशात् स्वधामनि यदि श्रद्धेयमस्मद्वचः ॥३९॥

३९––परब्रह्म का ध्यान—भोग क्षणभंगुर हैं ।

छप्पय

भोग चलाते हैं जो जग को देखो हैं सब क्षणभंगुर ।
फिर ऐसा वह कौन भोग जिस हेतु लगाते तुम चक्कर ॥
त्यागो इनकी सब चेष्टायें यदि मेरा विश्वास करो ।
तृष्णाओं से हृदय बचा कर परब्रह्म आभास करो ॥
आशापाश विनाश से, शुद्ध चित्त कर लीजिये ।
स्वयं प्रकाशक ब्रह्म में, प्रीतिसहित मन दीजिये ॥

ये भोग अनेक प्रकार के और नाशवान हैं । इन्हीं भोगों से यह संसार अर्थात् शरीर-धारणादि जन्मग्रहण हैं । अरे अज्ञानो मनुष्यो ! इस संसार में किस भोग के पाने के लिए चक्कर लगाया करते हो; अतः भोग-संग्रह बस करो । कवि कहता है कि यदि हमारे वचन में विश्वास हो तो आशा रूप अनेक बन्धन के उपशम से अर्थात् आशाओं को त्याग करने से निर्मल हुए अपने चित्त को प्रेम के साथ आत्मरूप धाम में अर्थात् आत्मसाक्षात्कार करने में स्थिर करो । भोगों की ओर से मन को हटाकर आत्मसाक्षात्कार में लीन करना यही सर्वोत्तम कार्य है ॥ ३९ ॥

*** सखे धन्याः केचित् त्रुटितभवबन्धव्यतिकरा**
वनान्ते चित्तान्तर्विषमविषयाशीविषगताः ।
शरच्चन्द्रज्योत्स्नाधवलगगनाभोगसुभगां
नयन्ते ये रात्रिं सुकृतचयचित्तैकशरणाः ॥

ईश्वरोपासना—तपस्वियों को धन्य है ।

धन्य पुरुष जो वन में बैठे सेवें दिव्य मनोहर रात ।
शरद चन्द्रिका आनँद लूटें नभ महान सुन्दर अवदात ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जग बन्धन जिन तोड़ दिये हैं पुण्यपुञ्ज अवलम्बन हैं।
विषय-वासना विष से निर्मल ईशधाम जिनका मन है॥

हे मित्र ! जिन पुरुषों के संसार-बन्धन छूट गये हैं, और भयंकर विषय रूपी सर्प विष से जिनके मन विदूषित नहीं हुए हैं, एवं सुकृत राशि के अर्जन में जिनके मन संलग्न हैं और शरद काल के चन्द्रमा की चाँदनी से धवलित आकाश से सुन्दर लगने वाली जिनकी रातें वन के मध्य में व्यतीत होती हैं वे पुरुष धन्य हैं।

ब्रह्मेन्द्रादिमरुद्गणाँस्तृणकणान् यत्र स्थितो मन्यते
यत्स्वादाद्विरसा भवन्ति विभवास्त्रैलोक्यराज्यादयः।
भोगः कोऽपि स एव एक परमो नित्योदितो जृम्भते
भोः साधो ! क्षणभङ्गुरे तदितरे भोगे रतिं मा कृथाः।४०।

४०—परब्रह्म का ध्यान—ब्रह्मसुख महान सुख है।
सदा सुखद है उदित ब्रह्मसुख सबसे उत्तम और महान।
संस्थित हो जिसमें नर समझे इन्द्रादिक को तुच्छ समान॥
चखकर जिसका स्वाद मनुज को राज विभव फीका लगता।
साधू, केवल भोग वही सुख क्षणिक सुखों में क्यों ठगता ?॥

सर्वाधिक नित्य जिस भोग में स्थित पुरुष ब्रह्मा, इन्द्र प्रभृति देवतागणों को तृण के कण अर्थात् निःसार मानता है, जिसका स्वाद अर्थात् आनन्द प्राप्त करने से त्रिभुवन के राज्य रूप सम्पत्तियाँ उसे नीरस प्रतीत होती हैं, वह कोई अपूर्व नित्यकल्याणकारी एक ही भोग ब्रह्मानन्द रूप बढ़ाता ही जाता है। अत एव हे सज्जन ! क्षण में ही नाश पाने वाले उससे भिन्न दूसरे सांसारिक भोग में आसक्ति न करो॥ ४०॥

(काल महिमा)

सा रम्या नगरी महान् स नृपतिः सामन्तचक्रं च तत्
पार्श्वे तस्य च सा विदग्धपरिषत्ताश्चन्द्रबिम्बाननाः।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उद्वृत्तः स राजपुत्रनिवहस्ते वन्दिनस्ताः कथाः
सर्वं यस्य वशादगात् स्मृतिपथं कालाय तस्मै नमः ।।४१।।

४१—काल की प्रबलता–सबके भक्षक काल को प्रणाम है ।

छप्पय

रम्य नगर अत्यन्त महान् अरु वीर प्रतापी राजा था ।
अति प्रचण्ड थे राजपूत मंडल विद्वान विराजा था ।।
महिला चन्द्रमुखी उसकी थी वीर बली थे पुत्र सभी ।
बड़े कुशल थे बन्दीजन जो कहते अद्‌भुत कथा कभी ।।
लुप्त हुए जिस कालवश, सका न कोई थाम है ।
उसी काल को नम्र हो बारम्बार प्रणाम है ।।

जिसमें विलास आदि कर चुके ऐसी अनुभूत वह सुन्दर नगरी, वह बड़ा राजा अर्थात् चक्रवर्ती राजा और उसके पास वह देखा हुआ माण्डलिक राजाओं का समूह और उसकी वह प्रसिद्ध विद्वानों की सभा, चन्द्रमा के विम्व के समान सुन्दर मुखवाली वे रमणियाँ और उद्दण्ड राजकुमारों का समूह, वे स्तुति करने वाले बंदीगण, वे वार्ताएं ये सभी अनुभूत वस्तुएं जिसकी अधीनता से केवल स्मरण-मात्र रह गई, उन सवों का संहार करने वाले उस काल को प्रणाम है। अनुभव की हुई सभी वस्तुएं जिसके कारण लुप्त हुई। उस काल की महिमा का क्या वर्णन किया जाय अतः केवल हाथ जोड़ना ही पर्याप्त है ।। ४१ ।।

यत्रानेकः क्वचिदपि गृहे तत्र तिष्ठत्यथैको
यत्राप्येकस्तदनु बहवस्तत्र नैकोऽपि चान्ते ।
इत्थं नेयौ रजनिदिवसौ लोलयन् द्वाविवाक्षौ
कालः कल्यो भुवनफलके क्रीडति प्राणिशारैः ।।४२।।

४२—काल की प्रवलता–समर्थ कालपुरुष का खेल

छप्पय

जिस घर में थे भरे बीसियों वहाँ एक अब शेष रहा ।
फिरता था जो एक अकेला कुन्बेवाला हुआ अहा ।।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

घटना जब आरम्भ हुआ, तो रहा अकेला फिर बाकी।
खेल दिखाता काल बली, ये कैसी करता चालाकी॥
जग चोपड़ का वस्त्र ले, धर जीवों की गोट।
निस दिन के पाँसे चला, काल मारता चोट॥

जिस स्थान पर किसी घर में अनेक प्राणी थे वहाँ बाद में एक ही रह जाता है। जहाँ पहिले एक था और बाद में बहुत हुए, किन्तु अन्त में एक भी न रहा। इस प्रकार बिताये जाने वाले रात और दिन बार-बार ग्रहण करता हुआ काल जुआरी की तरह अर्थात् जिस प्रकार पट पर के खाने (कोष्ठ) में गोटियों और खेल के आखिर में एक भी नहीं इस तरह करता है और रात-दिन दो पाँसों को बार-बार उठाकर डालता हुआ खेलने में चालाक जुआरी पट पर गोटियों से खेलता है, संसार में प्राणियों से खेला करता है। अर्थात् काल इच्छानुकूल प्राणियों को इधर-उधर नचाता है ऐसे बली काल को प्रणाम ही उचित है॥४२॥

आदित्यस्य गतागतैरहरहः संक्षीयते जीवितं
व्यापारैर्बहुकार्यभारगुरुभिः कालोऽपि न ज्ञायते।
दृष्ट्वा जन्मजराविपत्तिमरणं त्रासश्च नोत्पद्यते
पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत्॥४३॥

४३—अज्ञान—मोह-मदिरा का मद।

उदय अस्त रवि होते होते, आयू ढलती जाती है।
जान पड़े नहिं समय बीतते, बहु कार्यों की थाती है॥
जन्म मरण वा विपति जरा लखि, मन भय तनिक न खाता है।
हो उन्मत्त मोहमय मदिरा पी, जग चलता जाता है॥

सूर्य के उदय और अस्त के साथ प्रतिदिन जीवन क्षीण होता जाता है! बहुत से देह-गेह सम्बन्धी कार्यों से जीवनोपाय के उद्योगों से बीतने वाले समय का भी पता नहीं चलता। जन्म, जरा (बुढ़ापा) के कारण कष्ट तथा मृत्यु को देखकर भी भय नहीं उत्पन्न होता। इससे ज्ञात होता है कि सारा जगत्

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अर्थात् संसार के सभी प्राणी मोहरूपी मदिरा की पीकर मतवाले हो गये हैं। सब कुछ देख-सुन कर भी जीव सजग नहीं होता यह उस काल की ही महिमा है ॥ ४३ ॥

रात्रिः सैव पुनः स एव दिवसो मत्वा मुधा जन्तवो
धावन्त्युद्यमिनस्तथैव निभृतप्रारब्धतत्तत्क्रियाः।
व्यापारैः पुनरुक्तभूतविषयैरित्थं विधेनामुना
संसारेण कदर्थिता वयमहो मोहान्न लज्जामहे ॥४४॥

४४—अज्ञान—मोह का अन्धकार।

वही रात अरु वही दिवस, हैं आते जाते अपने आप।
उद्यम रत उद्यमी पुरुष, प्रारब्ध भोगते हैं चुपचाप ॥
निन्दित कर्मों में लग हम हैं व्यर्थ दौड़तेवि षयों में।
मोहजाल में फँसे निरन्तर, होय न लज्जित हृदयों में ॥

फिर वही रात बीती रात की तरह है, और दिन भी बीते दिन केस मान है, यह जानवर भी प्रयत्नशील प्राणी उसी प्रकार चुपचाप उन-उन व्यापारों को आरम्भ करते हुए वार-बार अनुभव किये हुए अर्थात् चवाये को चबाने (चर्वितचर्वण करने) वाली चेष्टाओं से व्यर्थ ही दौड़ा करते हैं। इस प्रकार वदलने वाले संसार से निन्दित या हीन किये गये हम अज्ञान से लज्जित नहीं होते–यह बड़ा ही आश्चर्य है ॥ ४४ ॥

न ध्यानं पदमीश्वरस्य विधिवत् संसारविच्छित्तये
स्वर्गद्वारकपाटपाटनपटुर्धर्मोऽपि नोपार्जितः ।
नारीपीनपयोधरोरुयुगलं स्वप्नेऽपि नालिङ्गितं
मातुः केवलमेव यौवनवनच्छेदे कुठारा वयम् ॥४५॥

४५—व्यर्थ जीवन—संसार में जन्म लेकर योग अथवा भोग नहीं किया तो जीवन व्यर्थ गया।

किया न विधिवत् ध्यान ईश पद, जो बन्धन कटता संसार।
धर्म उपार्जन किया न ऐसा, स्वागत मिलता स्वर्ग दुआर ॥

Funding by IKS-MoE

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नारी पुष्ट पयोधर जंघा, छाती नहीं लगा पाये।
माता के यौवन विनाश को, हा ! कुठार बन जग आये ॥

सांसारिक आवागमन से छुटकारा पाने के लिए अर्थात् मोक्ष प्राप्ति के लिए शास्त्रानुसार श्रीशिवजी के चरण-कमल का ध्यान नहीं किया। स्वर्ग के प्रवेश मार्ग (द्वार) की किवाड़ी तोड़ने या खोलने में समर्थ ऐसा धर्म—यज्ञादि का भी सम्पादन नहीं किया। और स्वप्न में भी स्त्री के पुष्ट कुचद्वय और उरुद्वय का आलिंगन नहीं किया अर्थात् चार पुरुषार्थों में धर्म और काम इन दो पुरुषार्थों को नहीं किया और न मोक्ष-साधक शंभुचरण का ध्यान किया। इस प्रकार केवल माँ के यौवनरूपी वन को काटने के लिए हम लोग कुल्हाड़ी के रूप में उत्पन्न हुए। तात्पर्य यह कि अर्थ को छोड़कर वाकी तीन पुरुषार्थों में से एक भी अर्जित नहीं किया कि जन्म लेना सफल हो किन्तु जन्म लेकर माँ की जवानी नष्ट कर दी क्योंकि सन्तानोत्पत्ति तक ही यौवन का वेग रहता है उसके बाद वह नहीं रहता ॥ ४५ ॥

नाभ्यस्ता प्रतिवादिवृन्ददमनी विद्या विनीतोचिता
खड्गाग्रैः करिकुम्भपीठदलनैर्नाकं न नीतं यशः ।
कान्ताकोमलपल्लवाधररसः पीतो न चन्द्रोदये
तारुण्यं गतमेव निष्फलमहो शून्यालये दीपवत् ॥ ४६ ॥

४६—व्यर्थ जीवन–बिना विद्या, यश अथवा भोग के युवावस्था निष्फल है।

पारङ्गत नहीं हुए शास्त्र मथ वादिवृन्द को शरमाते।
ऐसे धनी हुए न खड्ग के कीर्ति-पताका लहराते ॥
लिये सुन्दरी चन्द्र चाँदनी पान नहीं रस अधर किया।
यौवन बीता हाय हमारा सूनें घर ज्यों जले दिया ॥

खण्डन करने के लिये तत्पर वादी लोगों के समूह को दवाने वाली सत्सम्प्रदायशुद्ध अत एव प्रतिवादियों को निरुत्तर कर देनेवाली, शिक्षितों के योग्य सहृदयहृदयाह्लादिनी वेदशास्त्रपुराणादिरूप विद्या का अभ्यास अर्थात् समुचित रूप से बार-बार चिन्तन आदि नहीं किया, युद्ध में हाथियों के पीठ को मसलने

Funding by IKS-MoE

BVBSSMV

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वाली तलवार की धाराओं से शत्रुओं को मार कर अपने यश को स्वर्ग में नहीं पहुँचाया। अर्थात् न बुद्धिमत्ता प्रकट की और न शूरता ही दिखलायी। और चन्द्रोदय के समय उद्दीपक होने के कारण कामिनी के कोमल पल्लव के समान अधर के रस का न पान ही किया। अतः वह कहना पड़ता है कि सूने–निर्जन गृह में दीपक की भाँति पूरा तारुण्य निष्फल हो गया–यह दुःख का विषय है ॥ ४६ ॥

विद्या नाधिगता कलङ्करहिता वित्तं च नोपार्जितं
शुश्रूषाऽपि समाहितेन मनसा पित्रोर्न सम्पादिता।
आलोलायतलोचनाः प्रियतमाः स्वप्नेऽपि नालिङ्गिताः
कालोऽयं परपिण्डलोलुपतया काकैरिव प्रेर्यते ॥ ४७ ॥

४७—व्यर्थ जीवन—विद्याहीन, माता-पिता की सेवा तथा भोग से रहित जीवन व्यर्थ गया।

निष्कलंक विद्या नहिं सीखी नहीं उपार्जन द्रव्य किया।
सेवा मातु-पिता नहिं कीन्ही चित्त लगाकर पुण्य लिया॥
मृगनयनी सुन्दरी नारियाँ आलिङ्गन नहिं कर पाई।
करते लोभ परान्न-भोग का बीती आयु काक नाई॥

कलङ्क अर्थात् दोष से हीन, सप्रमाण विद्या नहीं पढ़ी। दान-भोग के लिये पर्याप्त धन भी नहीं कमाया। सावधान और प्रसन्न मन से माता-पिताओं की सेवा शुश्रुषा नहीं की। चंचल एवं विशाल नेत्रवाली प्रियतमाओं का स्वप्न में भी आलिङ्गन न कर सका किन्तु कौओं की भाँति हम लोगों ने इस प्रतिक्षण बदलने वाले समय को परान्नभक्षण की लालच में ही विताया। आशय यह है कि माता-पिता की सेवा द्वारा धर्म, योग्य धनार्जन द्वारा अर्थ, कामिन्यालिङ्गन द्वारा काम तथा मोक्ष-सम्पादक ज्ञान न प्राप्त कर केवल पेट भरने की ओर ही ध्यान दिया ॥ ४७ ॥

वयं येभ्यो जाताश्चिरपरिगता एव खलु ते
समं यैः संवृद्धाः स्मृतिविषयतां तेऽपि गमिताः।

Funding by IKS-MoE
232

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इदानीमेते स्मः प्रतिदिवसमासन्नपतना
गतास्तुल्यावस्थां सिकतिलनदीतीरतरुभिः ॥ ४८ ॥

४८—जीवन की अल्पता–मृत्यु अवश्यम्भावी है।

हुए बहुत दिन चले गये वे, जिनने हमको जन्म दिया।
बढ़ जिनके सँग हुए सयाने, काल उन्हें भी लील लिया।
वृद्धावस्था अब आ पहुची देह टूटती जाती है।
नदी बालुका तट के द्रुम-सी, दशा समझ में आती है॥

हम जिनसे उत्पन्न हुए, वे माता-पिता तो बहुत दिन हुए इस संसार से चल बसे। जिन लोगों के साथ हम बड़े हुए वे मित्र भी स्मरण की वस्तु बन गये अर्थात् वे भी न रहे। इस समय प्रतिदिन हम लोग तो बलुहे नदी के किनारों पर रहने वाले तरुओं की भाँति अवस्था को = शीघ्र पतन पाने वाली दशा को, प्राप्त कर रहे हैं अर्थात् हमारी दशा "अब गिरे, तब गिरे" की कहावत को चरितार्थ कर रही है॥ ४८॥

आयुर्वर्षशतं नृणां परिमितं रात्रौ तदर्धं गतं
तस्यार्धस्य परस्य चार्धमपरं बालत्ववृद्धत्वयोः।
शेषं व्याधिवियोगदुःखसहितं सेवादिभिर्नीयते
जीवे वारितरङ्गचञ्चलतरे सौख्यं कुतः प्राणिनाम् ॥ ४९ ॥

४९—जीवन की अल्पता–सुख का अभाव।

नर आयू सौ वर्षों की है, आधी चली जाय सोते।
आधी की आधी, बालापन और बुढ़ापे में खोते॥
बाकी रोग, वियोग, दुःख या सेवा आदिक में जाता।
जीवन चञ्चल है तरङ्ग-सा जीव कहाँ सुख है पाता?॥

"शतायुर्वै पुरुषः" इत्यादि श्रुतियों द्वारा मनुष्यों की आयु सौ वर्ष की स्थिर की गई है। उसका आधा भाग अर्थात् पचास (५०) वर्ष का तो रात में चला गया। उसके आधे का आधा भाग अर्थात् पचीस (२५) वर्ष का काल बालपन और बुढ़ापा में बीत गया। अनन्तर शेष (अर्थात् २५) वर्ष का समय व्याधि = रोग, वियोग = आत्मीयजन एवं धन का विछोह होने वाले दुःख

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के साथ अपनी जीविका के लिए श्रीमानों की सेवा में बीतता है अतः जल की लहरी के समान अत्यन्त चंचल अर्थात् क्षणिक इस जीवन में प्राणियों को सुख कहाँ से प्राप्त हो सकता है ? सुख असम्भव है, क्योंकि सभी दुःखमय ही दिखाई पड़ता है ॥ ४९ ॥

क्षणं बालो भूत्वा क्षणमपि युवा कामरसिकः
क्षणं वित्तैर्हीनः क्षणमपि च सम्पूर्णविभवः ।
जराजीर्णैरङ्गैर्नट इव बलीमण्डिततनु-
र्नरः संसारान्ते विशति यमधानीयवनिकाम् ॥५०॥

५०—संसार के पदार्थ क्षणभंगुर हैं, मनुष्य की अवस्थायें मृत्यु तक क्षण-क्षण बदलती रहती हैं।

छप्पय

थे बालक एक समय हुए फिर रसिक काम के।
कभी रहे अति दीन, हुए फिर धनी धाम के॥
क्षण में सुकड़ी खाल, जरा ने रूप दिखाये।
यमनगरी की ओर चले, दूतन संग धाये॥
बहुरूपी-से रूप ये नर धरता संसार में।
दिखा दिखा अभिनय कई, छिप जाता यमद्वार में॥

नाटक में भिन्न-भिन्न भूमिका (रूप-वेषादि) में आने वाले नट-नर्तक के समान मनुष्य कुछ क्षण बालक के रूप में, फिर काम वासनाओं का रसिक तरुण के रूप में, कुछ काल-कंगाल की भाँति धनहीन और कुछ काल सब प्रकार के वैभव=सम्पत्ति से पूर्ण तथा झुर्रियों से भरे शरीर में बुढ़ापे के कारण जीर्ण अंगों से, खेल के अन्त में जिस प्रकार नट परदे के भीतर चला जाता है वैसे ही संसार के अंत में यमराज की राजधानी रूप यवनिका (खेल की समाप्ति के सूचक परदे) में घुस जाता है अर्थात् उत्पन्न होकर कुछ काल तक बच्चा, बाद में जवान, और उस जवानी में कभी दरिद्र और कभी श्रीमान् होकर बुढ़ापे से जीर्ण झुर्री वाली अपनी काया बनाकर अन्त में यम की नगरी में प्रविष्ट होता है। सभी दशाओं के भोग के बाद मृत्यु अवश्य ग्रस लेती है। इस प्रकार 'पुनर्जन्म, पुनर्मृत्यु के फन्दे से बच नहीं पाता इसलिये वैराग्य का आश्रय उत्तम है ॥ ५० ॥

Funding by IKS-MoE

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

त्वं राजा वयमप्युपासितगुरुप्रज्ञाभिमानोन्नताः
ख्यातस्त्वं विभवैर्यशांसि कवयो दिक्षु प्रतन्वन्ति नः ।
इत्थं मानधनातिदूरमुभयोरप्यावयोरन्तरं
यद्यस्मासु पराङ्मुखोऽसि बयमप्येकान्ततो निःस्पृहा ।।५१।।

५१—आत्मसम्मान—राजा और साधु के सम्मान में बराबरी । (१)

छप्पय

जैसे राजा भरा कोष है—खूब तुम्हारा ।
गुरु सेवा से विदुषों में पद उच्च हमारा ।।
धन-कुबेर की ख्याति तुम्हारी जग में भारी ।
जमी धाक विद्या विशाल चहुँ ओर हमारी ।।
अन्तर धन अरु मान का, हम तुममे बेशक बड़ा ।
पर यदि तू मुख फेरता, उदासीन मैं भी खड़ा ।।

कोई संन्यासी राजा में किसी प्रसंग विशेष में कह रहा है कि राजन् ! तुम तो प्रजा को प्रसन्न करने वाले होने से बड़े श्रेष्ठ (उन्नत) हो तो हम भी गुरु चरणों की उपासना द्वारा प्राप्त श्रेष्ठ वृद्धि के अभिमान से उन्नत हैं अर्थात् गुरु-सेवा से मिली सद्‌बुद्धि के कारण हमारा भी गौरव है । तुम्हारी प्रसिद्धि सम्पत्तियों से है और कविगण हम लोगों के यशों को सब दिशाओं में फैला रहे हैं । इस प्रकार तुम्हारा और हमारा अन्तर (भेद) मान और धन से बहुत ही दूर है अर्थात् तुम केवल धनवान हो और हम बुद्धि के कारण समानरूप धन वाले हैं । फिर यदि तुम्हारी हमारे ऊपर अश्रद्धा है तो हम पूर्ण निस्पृही हैं एवं तुमसे कुछ भी नहीं चाहते ।। ५१ ।।

अर्थानामीशिषे त्वं वयमपि च गिरामीश्महे यावदर्थं
शूरस्त्वं वादिदर्पव्युपशमनविधावक्षयं पाटवं नः ।
सेवन्ते त्वां धनाढ्या मतिमलहतयेमामपि श्रोतुकामा-
मय्यप्यास्था न ते चेत्त्वयि मम नितरामेव राजन्ननास्था।।५२।।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

५२—आत्मसम्मान—राजा और साधु के सम्मान में बराबरी। (२)

छप्पय

लक्ष्मीपति हैं आप अगर तो हम विद्यापति।
युद्धशूर हैं आप, हमारी शास्त्र विजय गति ॥
धन तृष्णा के लोभ करें नर सेवा तेरी।
नाश हेतु अज्ञान शरण आते हैं मेरी ॥
हममें श्रद्धा प्रेम यदि, समझे तू अच्छा नहीं।
तो तेरे प्रति आस्था, की अपनी इच्छा नहीं ॥

हे राजन् ! तुम अर्थों=धनों के ईश्वर हो और हम भी पूरे अर्थ=अभिप्राय को प्रकट करने वाले शास्त्रीय वचनों पर पूर्ण अधिकार रखते हैं अर्थात् जैसे तुम्हारा सब प्रकार की धनादि-सम्पत्ति पर अधिकार है वैसे ही हमारा शास्त्रों में प्रतिपादित सब प्रकार की उक्तियों पर अधिकार है। तुम शूर हो अर्थात् शत्रुओं का दमन कर सकते हो तो प्रतिवादियों के गर्व को शान्त करने की विधि में हम लोगों का अक्षय अर्थात् नष्ट न होने वाला चातुर्य है। धनिक गण अपना धन वचाने या बढ़ाने की इच्छा से तुम्हारी सेवा करते हैं। और हम लोगों से शास्त्रीय सिद्धान्तों को सुनने या समझने की इच्छा वाले शिष्यगण बुद्धि की जड़ता को नाश के लिए हमारी सेवा करते हैं। इतने पर भी तुम्हारी हमारे ऊपर श्रद्धा न हो या विश्वास न हो तो हमारी भी तुम्हारे ऊपर श्रद्धा नहीं है ॥५२॥

वयमिह परितुष्टा वल्कलैस्त्वं दुकूलै-
स्सम इह परितोषो निर्विशेषो विशेषः।
स तु भवतु दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला
मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः ॥५३॥

५३—आत्मसम्मान—राजा और साधु के सम्मान में बराबरी। (३)

सुन्दर वस्त्र पहिनकर तुम हो मन को मुदित दिखाते।
तो हम भी वल्कल धारण कर संतोषित हो जाते।
सम संतोषी दोनों ठहरे भेद रहा क्या, राजा
तृष्णावाला ही दरिद्र है संतोषी सिरताजा ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हे राजन् ! हम तो इस समय रुकड़ी की छाल से बने हुए मोटे भद्दे कपड़े से बहुत प्रसन्न हैं और तुम रेशमी कीमती महीन वस्त्रों से प्रसन्न होते हो। इस तरह हम दोनों का सन्तोष तो समान ही है क्योंकि सन्तोष से किसी प्रकार की विशेषता नहीं है जिसकी तृष्णा (चाह) बहुत बड़ी है वह तो भले ही दरिद्र हो। मन के सन्तुष्ट होने पर कौन धनी और कौन दरिद्र है। अर्थात् कोई व्यक्ति मन के सन्तोष पाने पर गरीब और अमीर नहीं है ॥ ५३ ॥

फलमलमशनाय स्वादु पानाय तोयं
क्षितिरपि शयनार्थं वाससे वल्कलं च
नवघनमधुपानभ्रान्तसर्वेन्द्रियाणा-
मविनयमनुमन्तुं नोत्सहे दुर्जनानाम् ॥५४॥

५४—वैराग्य-अभिमानी दुष्टों का त्याग।

खाने को फल, और मधुर जल है पीने के लिए यहाँ।
पृथ्वी शय्या, है वल्कल पट, कष्ट नाम को हमें कहाँ ?
नवीन लक्ष्मी की मस्ती में जिसकी इन्द्रिय झूम रहीं ॥
ऐसे दुर्जन नर की अविनय सहने की अब ताव नहीं ॥

सामयिक आम आदि फल खाकर भूख मिटाने के लिए पर्याप्त हैं, ऐसे ही प्यास मिटाने के लिए स्वादिष्ट (मधुर) पानी भी भरपूर है पृथ्वी भी सोने के लिए भरपूर है और शरीर के ढकने के लिए पेड़ की छाल भी काफी है। ऐसी दशा में तुरन्त मिले या मिलने वाले धन रूपी मदिरा के पान से कुमार्गगामिनी सारी इन्द्रियों वाले दुष्ट पुरुषों के द्वारा किये जाने वाले अनादर या अपमान को स्वीकार करने में मेरा उत्साह नहीं है ॥ ५४ ॥

अश्नीमहि वयं भिक्षामाशावासो वसीमहि।
शयीमहि महीपृष्ठे कुर्वीमहि किमीश्वरैः ॥५५॥

५५—आत्मसम्मान—राजा और साधु के सम्मान में बराबरी। (४)

भिक्षा करके हम खावेंगे दिशा वस्त्र पहिरेंगे।
पृथ्वीतल पर शयन करेंगे राजा से क्या लेंगे ?

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हम भिक्षा अर्थात् भिक्षा में प्राप्त अन्न को खाएँगे, दिशा-रूपी वस्त्र को पहिरेंगे अर्थात् दिगम्बर रहेंगे और भूतल पर सोएँगे । फिर हमें श्रीमानों या राजाओं से क्या प्रयोजन होगा ? कुछ नहीं ॥ ५५ ॥

न नटा ना विटा न गायका न च सभ्येतरवादचुञ्चवः ।
नृपमीक्षितुमत्र के वयं स्तनभारानमिता न योषितः ॥५६॥

५६—अपने को राजदर्शन के अयोग्य बताने के व्याज से राजा की निन्दा ।

नहिं नट, विट या गायक ही हैं नहिं विनोद में पटु ए, हाँ हैं ।
नहिं स्तन भारा वनिता है राजा के हम योग्य कहाँ हैं ॥

हम न तो नट हैं जो कि भिन्न-भिन्न प्रकार का वेष धारण कर विचित्र ढंग से नाचते हैं, और न विट हैं जो एक प्रकार की विद्या जानते हैं और प्रधान व्यक्तिको प्रसन्न करते हैं; न गायक अर्थात् संगीतमें निपुण गवैये हैं और न असभ्यों की अश्लीलतापूर्ण वात-चीत करने में प्रसिद्ध हैं और न तो स्तनों के भार से कुछ झुके अंगोंवाली स्त्रियाँ ही हैं । तव तो हम यहाँ राज-दर्शन के लिए कौन हैं ? राज-दर्शन का फल धन प्राप्ति है वह तो ऊपर कहे हुए पाँच प्रकार के लोगों को हो सकती है और हम उनमें से नहीं हैं तव राजा के दर्शन के लिये हम कौन हैं ? कोई नहीं ॥ ५६ ॥

विपुलहृदयैरीशैरेतज्जगज्जनितं पुरा
विधृतमपरैर्दत्तं चान्यैर्विजित्य तृणं यथा ।
इह हि भुवनान्यन्यै धीराश्चतुर्दश भुञ्जते
कतिपयपुरस्वाम्ये पुंसां क एष मदज्वरः॥५७॥

५७—आत्मसम्मान—छोटे-छोटे धनिकों के अभिमान का कोई कारण नहीं (५)

छप्पय

हुये उदार महाशय ऐसे जिन जग को सम्पन्न किया ।
श्रेष्ठ पुरुष हो गये बली, जिन सुख-समृद्धि का भार लिया ॥
ऐसे भी जिन पृथ्वी जीती दान करी फिर तुच्छ समान ।
अब भी ऐसे विद्यमान, जो भुवन चतुर्दश के श्रीमान् ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ठाकुर थोड़े गाँव फिर, अभिमानी क्यों हो रहे।
मदज्वर है क्यों चढ़ रहा, कौन बात इनकी सहे ॥

पुराने समय में महान् और उदार बुद्धिवाले राजा हरिश्चन्द्र प्रभृति सार्वभौम नरेशों ने इस जगत् को सम्पूर्ण धर्माचरणों द्वारा स्थापित किया, अन्य ययाति प्रभृति नरेन्द्रों ने उसका अच्छे प्रकार से पालन किया। तथा बलि प्रभृति राजाओं ने शत्रु को जीत उसी प्राप्त किये जगत् को तृण के समान दूसरों को दे दिया। सम्प्रति दो चार या पाँच-छः नगरों का स्वामित्व अर्थात् अधिकार पर पुरुषों को यह गर्व रूपी, बुद्धिनाशक सन्निपात-सा ज्वर किसलिये है ? अर्थात् यह अभिमान वर्तमान नरेशों का तुच्छ अतएव व्यर्थ है ॥ ५७ ॥

अभुक्तायां यस्यां क्षणमपि न यातं नृपशतै-
र्धुवस्तस्या लाभे क इव बहुमानः क्षितिभृताम्।
तदंशस्याप्यंशे तदवयलेशेऽपि पतयो
विषादे कर्तव्ये विदधति जडाः प्रत्युत मुदम् ॥५८॥

५८—आत्मसम्मान—पृथ्वी का मालिक बनकर घमण्ड नहीं विषाद करना चाहिये। (६)

जी भर भोग सका नहि कोई हुए मही के पति लाखों।
क्यों कर फिर गर्वित हो कोई कौन भाँति इसको राखों ॥
लेकर तुच्छ खण्ड इक इसका मूरख खुशी मनाते।
सचमुच है अवसर विषाद का समझ न इसको पाते ॥

अनेक राजा लोग जिस पृथ्वी का उपभोग क्षणभर भी नहीं किया और चल बसे, उस भूमि की प्राप्ति में राजाओं को भला कैसे बहुत ही आदर है। उस भूमि के भाग के भाग और उसके भी अंश के कुछ हिस्से पर मूर्ख मालिक खेद या दुःख करने के बदले हर्ष किया करते हैं ॥ ५८ ॥

मृत्पिण्डो जलरेखया बलयतिः सर्वोऽप्ययं नन्वणुः
स्वांशीकृत्य स एव सङ्गरशतै राज्ञां गणा भुञ्जते।
पे दद्युर्ददतोऽथवा किमपरं क्षुद्रा दरिद्रं भृशं
धिग्धिक्तान्पुरुषाधमान्धनकणान्वाञ्छन्तितेभ्योऽपिये॥५९॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

५९—आत्मसम्मान—पृथ्वी के मालिक बनकर घमण्ड नही विषाद करना चाहिये। (७)

यह पृथ्वी मृत्पिण्ड ह्रस्व सा सदा वारि-विस्तार घिरा।
लाखों नृपती लड़े इसके हित तब यह बाँटी वसुन्धरा ॥
है अति छुद्र दरिद्र नृपति ये दानी होना क्या जानें।
अधम पुरुष धिक्कार उन्हें भिक्षा इनसे जो जा माँगें ॥

पानी की लकीर से चारों ओर से घिरा यह सभी भूमण्डल रूप मिट्टी का गोला निश्चय ही बहुत छोटा है। जो राजाओं के समूह उसी को अनेक लड़ाइयों द्वारा अपना भाग बनाकर उपभोग करते हैं, क्या वे धन देंगे ? अथवा यदि देते हैं तो इससे बढ़कर दूसरा और कठिन काम कौन है ? क्योंकि वे बहुत ही हीन और दीन हैं जो नर उनसे भी धन के टुकड़े लेना चाहते हैं मनुष्यों में उन नीच नरों को वार-वार धिकार है ॥ ५९ ॥

स जातः कोऽप्यासीन्मदनरिपुणा मूर्ध्नि धवलं
कपालं यस्योच्चैर्विनिहितमलङ्कारविधये।
नृभिः प्राणत्राणप्रवणमतिभिः कैश्चिदधुना।
नमद्भिः कः पुंसामयमतुलदर्पज्वरभरः ॥६०॥

६०—आत्मसम्मान–अभिमान की निन्दा। (८)

बड़भागी नर हुए जगत में जिनका सुन्दर श्रेष्ठ कपाल।
अलङ्कार के हेतु काम-रिपु लीना अपनी माला डाल ॥
अभिमानी है ऐसे अब जब दीन उन्हें जा करे प्रणाम।
सम्मुख आया देख शरण में मद ज्वर का चढ़ता सरसाम ॥

वह कोई विरला ही पुरुष जन्म लेकर सफल हुआ था, जिसकी धवल सिर की हड्डी को कामशत्रु शिवजी ने भूषण बनाने के लिए अपने ऊँचे मस्तक पर रख लिया किन्तु इस ससय अपने तुच्छ प्राणों की रक्षा करने में बुद्धि लगाने वाले अत एव प्रणाम करने वाले मनुष्यों से पुरुषों को अनुपम अभिमान रूप ज्वर का यह भार कैसा ? धनार्थियों के प्रणाम से गर्व करना नरेशों का उचित नहीं ॥६०॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(मन को सम्बोधन और नियमन)

परेषां चेतांसि प्रतिदिवसमाराध्य बहुधा
प्रसादं किं नेतुं विशसि हृदय ! क्लेशकलितम्
प्रसन्ने त्वय्यन्तस्स्वयमुदितचिन्तामणिगणो
विविक्तः सङ्कल्पः किमभिलषितं पुष्यति न ते ॥६१॥

६१–परब्रह्म का ध्यान–दूसरों के मन में घुसने के बजाय अपने मन में घुसो।

कौन अर्थ सह घोर कष्ट, मन, व्यर्थ रिझाता औरों को।
क्यों पर के उर घुसा चाहता भूल और सब ठौरों को ॥
अपने अन्तःकरण घुसे यदि त्याग सभी सङ्कल्प वहीं।
स्वयं प्रकाशित चिन्तामणि गण वाञ्छित फल क्या देय नहीं ॥

हे हृदय ! प्रत्येक दिन बहुत तरह से दूसरों के हृदयों को अपने अनुकूल बनाकर अति कठिनाई से प्राप्त की हुई कृपा को मनों में ही ले जाने के लिए क्यों प्रवृत्त होते हो ? तुम अपने हृदय में यदि प्रसन्न हो जाओ अर्थात् बाहर से मुख मोड़कर भीतर ही भीतर प्रसन्न होने की चेष्टा करो तो बिना परिश्रम अर्थात् आप ही आप उत्पन्न चिन्तामणि नामक मनोरथ-पूरक पत्थर या रत्न विशेषों का गण ही निष्कलंक मानस कर्म या इच्छाविशेष तुम्हारी कामना को पुष्ट या पूर्ण नहीं करेगा ? अवश्य करेगा । आत्मा को प्रसन्न करने से इष्ट सिद्धि हो जायगी तब दूसरों के मन को प्रसन्न करने का कष्ट नहीं उठाना चाहिए ॥ ६१ ॥

❀ सत्यासेव त्रिलोकीसरिति हरशिरश्चुम्बिनीवच्छटायां
सद्वृत्तिं कल्पयन्त्यां वटविटपभवैर्वल्कलैः सत्फलैश्च
कोऽयं विद्वान् विपत्तिज्वरजनितरुजातीवदुःखासिकानां
वक्त्रंवीक्षेत दुःस्थे यदि हि न बिभृयात्स्वे कुटुम्बेऽनुकम्पाम् ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वैराग्य—तपस्या ही में सुख है ।

छप्पय

तीन लोक की नदी सुरसरी विद्यमान जब पावें ।
शम्भुजटा जो चुम्बन करती अद्भुत छटा दिखावें ॥
जब बट, वल्कल और मधुर फल पूर्ति साधु की करते ।
कौन काज-चिन्ता करि डोलें इत उत व्यर्थ भटकते ?
फिर भी क्या पण्डित कोई मोहित होकर कुटुम पर ।
जा देखे निज नारी मुख, फँस सिसके जो विपतिज्वर ।

भगवान् शंकर के शिर-स्थित जटा में विहार करने वाली, त्रैलोक्यगामिनी गंगाजी के विद्यमान रहते वटवृक्ष के वल्कल और मधुर फलों से जीविका चलते रहते कौन ऐसा विद्वान् है जो विपत्ति ज्वर से उत्पन्न पीड़ा से अधिक दुःख से श्वास लेने वाले प्रभुओं का मुख देखेगा यदि दुःखी अपने कुटुम्ब के ऊपर कृपा का भाव न रखेगा ।

परिभ्रमसि किं मुधा क्वचन चित्त ! विश्राम्यतां
स्वयं भवति यद्यथा भवति तत्तथा नान्यथा ।
अतीतमननुस्मरन्नपि च भाव्यसङ्कल्पय-
न्नतर्कितसमागमानुभवामि भोगनाहम् ॥६२॥

६२—धैर्य समाधि—चिन्ता का त्याग । (१)

कर विराम इक ठौर चित्त क्यों व्यर्थ भटकता ।
होनी होगी अवसि अन्य हो ही क्या सकता ?
याद करूँ नहिं भूत काल नहिं भविष्य संजोगूँ ।
भोग प्राप्त हों अनायास तिनको ही भोगूँ ॥

हे मन ! व्यर्थ क्यों चक्कर लगा रहे हो ? कहीं पर विश्राम करो । जो काम जैसे होने वाला होता है वह स्वयं वैसे होता है, दूसरे प्रकार से नहीं । अतः अपनी जगह पर ही स्वच्छन्दता से विश्राम करो । बीती बात को याद न कर और भावी=होनहार की चाह न कर मैं बिना सोचे एकाएक प्राप्त होने वाले भोग योग्य विषयों का अनुभव करता हूँ ॥ ६२ ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

एतस्माद्विरमेन्द्रियार्थगहनादायासकादाश्रय
श्रेयोमार्गमशेषदुःखशमनव्यापारदक्षं क्षणात् ।
स्वात्मीभावमुपैहि सन्त्यज निजां कल्लोललोलां गतिं
मा भूयो भज भङ्गुरां भवरतिं चेतः प्रसीदाधुना ॥६३॥

६३—धैर्य समाधि—शान्तभाव की प्रशंसा । (२)

ले विश्राम विषयवन से मन, भयदायक चक्कर है ।
अब ले श्रेय मार्ग का आश्रय दुखभञ्जन भवहर है ॥
शान्तभाव को धारण कर ले त्याग गती चञ्चल को ।
इच्छा को तज और ओढ़ ले मुदिता के अंचल को ॥

हे मन ! कष्टदायक श्रोत्रादि इन्द्रियों के शब्दादि विषय अर्थात् पदार्थ रूपी वन से विराम लो अर्थात् इन लौकिक वस्तुओं से मुँह मोड़ लो और क्षण भर ही में सम्पूर्ण दुःखों को मिटाने के काम में कुशल श्रेयोमार्ग अर्थात् ज्ञान मार्ग का अनुसरण करो । तथा स्व-स्वरूप के अनुसन्धान करने में लग जाओ । ऊँची लहरों की तरह चंचल निजी गति को छोड़ दो फिर से क्षण में नश्वर संसार की वासना की ओर न लगो । किन्तु अब प्रसन्न, स्थिर और शान्त हो जाओ क्योंकि मन प्रसन्नता को छोड़ अन्य अनेक पुण्यप्रद कार्यों से कल्याणप्राप्ति की आशा केवल दुराशा मात्र है ॥ ६३ ॥

मोहं मार्जय तामुपार्जय रतिं चन्द्रार्धचूडामणौ
चेतः स्वर्गतरङ्गिणीतटभुवामासङ्गमङ्गीकुरु ।
को वा वीचिषु बुद्बुदेषु च तडिल्लेखासु च श्रीषु च
ज्वालाग्रेषु च पन्नगेषु सरिद्वेगेषु च च प्रत्ययः ॥ ६४ ॥

६४—अज्ञान—मोह को त्यागकर शिवचरणों में प्रीति करो ।

चित्त, मोह को त्याग प्रीति कर, अर्धचन्द्र है जिनके भाल ।
स्वर्गतरंगिनि तट सेवक कर, आगे की सुधि चलो सँभाल ॥
कहो कौन विश्वास सर्प में, लक्ष्मी विद्युत, अग्निशिखा ।
लहर, बुलबुलों या मित्रों में ? यह कर अनुभव सन्त लिखा ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हे चित्त, पुत्र-मित्रादिविषयक प्रेम-रूप अज्ञान का त्याग कर। कला-मात्र चन्द्र को शिरोलङ्कार करनेवाले शिव जी में उस स्थिर रति को उत्पन्न कर। इसी प्रकार स्वर्गनदी गङ्गाजी के तट की भूमियों में निवास की घनी प्रीति को स्वीकार कर लो अर्थात् शिवजी और गंगातीरों में रम जाओ। क्योंकि जल की तरङ्गों पर, पानी में उठने वाले बुदबुदों पर, बिजली की लकीर की भाँति क्षणिक संपत्तियों पर, आग की लपटों पर, साँपों पर और नदियों के प्रवाह के वेगों पर कौन विश्वास किया जा सकता है ? कोई भी नहीं। अतः स्थिर और विश्वसनीय शिवजी तथा गंगाजी का तीर प्रदेश दो वस्तुएँ हैं तीसरी वस्तु नहीं ॥ ६४ ॥

चेतश्चिन्तय मा रमां सकृदिमामस्थायिनीमास्थया
भूपालभ्रुकुटीकुटीविहरणव्यापारपण्याङ्गनाम् ।
कन्थाकञ्चुकिनः प्रविश्य भवनद्वाराणि वाराणसी-
रथ्यापङ्क्तिषु पाणिपात्रपतितां भिक्षामपेक्षामहे ॥६५॥

६५—काशीवास—लक्ष्मी तिरस्कार।

वृथा करे आस्था लक्ष्मी में, मन, तू इसको क्यों चाहे ?
चंचल गणिका राज भृकुटि की क्यों कर तुझको निवाहे ?
ओढ़ गुदड़िया, चल काशी में प्रमुदित होकर झूमेंगे।
भिक्षा पाते गृहद्वारों से पाणिपात्र ले घूमेंगे ॥

हे मानस ! राजाओं की भ्रुकुटी रूप कुटी में विहार स्वरूप व्यापार से वेश्यातुल्य इस दृश्यमान लोकप्रसिद्ध सम्पत्ति को आदर से कभी एकबार भी न चाहो। भाव यह है कि क्षणिक सम्पत्ति के सम्पादन का प्रयत्न न करो। कथड़ी-गुदड़ी से शरीर को ढँकते हुए हम वाराणसी की सड़कों की कतारों में वर्तमान भवनों के द्वारों में घुसकर हाथ में रहनेवाले भिक्षापात्र अथवा हस्तरूप-पात्र में गिरी हुई अर्थात् लोगों द्वारा दी गई भिक्षा को चाहते हैं। इसी बात को पूज्य-पाद आचार्य शंकर ने कहा है "करतलभिक्षा, तरुतलवासः" इत्यादि ॥ ६५ ॥

अग्रे गीतं सरसकवयः पार्श्वयोर्दाक्षिणात्याः
पश्चाल्लीलावलयरणितं चामरग्राहिणीनाम् ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यद्यस्त्येवं कुरु भवरसास्वादने लम्पटत्वं
नो चेच्चेतः प्रविश सहसा निर्विकल्पे समाधौ ॥६६॥

६६—धैर्य समाधि—यदि उच्चश्रेणी के भोग प्राप्त नहीं हैं तो उनको त्याग योग में स्थित होना उचित है। (३)

सरस गवैये कला दिखावें दक्षिण के कवि गान करें।
चंवर डुलावें परम सुन्दरी कङ्कण की ध्वनि कान पड़ें॥
पा ऐसी सामग्री, हे मन, भवरस भले लिपट जाना।
नहिं तो जाकर के समाधि में दृढ़तापूर्वक जुट जाना॥

हे मन ! आगे सम्मुख में संगीत अर्थात् वीणादिवादक गायक जन हों और दोनों (दाहिने और बाँए) पार्श्वों में भी दक्षिण देश के सरस कविजन हों और पीछे की ओर चँवरडुलाने वाली रमणियों के विलासपूर्ण कंगन या चूड़ियों की झंकार ध्वनि हो—यदि ऐसा हो तो संसार के रसों का आस्वादन करने में लंपट हो जाओ अर्थात् सांसारिक पदार्थों के सुख का अनुभव करने के लिए तैयार हो जाओ। अन्यथा निःसन्देह चित्तैकाग्रता के द्वारा ब्रह्म ध्यान चिन्तन में लीन हो जाओ। क्योंकि ऐहिक और पारमार्थिक दोनों सुखों का त्याग कर केवल दीनता प्रकट करने से कुछ भी लाभ नहीं है ॥६६॥

प्राप्ताः श्रियस्सकलकामदुधास्ततः किं
न्यस्तं पदं शिरसि विद्विषतां ततः किम्
सम्पादिताः प्रणयिनो विभवैस्ततः किं
कल्पं स्थितास्तनुभृतां तनवस्ततः किम् ॥६७॥

६७—ईश्वरोपासना—वैभव और लक्ष्मी से क्या ? बिना ब्रह्मज्ञान सब व्यर्थ है।

सकल कामना देने वाली लक्ष्मी यदि पाई तो क्या ?
वश में कीन्हे मित्रवर्ग कर वैभव दिखलाई तो क्या ?
पदाक्रान्त वैरिन को करके महिमा प्रगटाई तो क्या ?
नश्वर तन रे कल्प अन्त तक आयु भी पाई तो क्या ?

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अनेक व्यापारों से सकल कामनाओं को पूरी करने वाली संपदायें यदि प्राप्त कर ली तो उससे क्या हुआ ? निज पराक्रमद्वारा शत्रुओं के मस्तक पर पैर रखा अर्थात् सभी शत्रुओं को पादाक्रान्त कर लिया तो उससे क्या ? सम्पत्ति या ऐश्वर्य से प्रेमी गणों का संग्रह किया तो उससे भी क्या ? अथवा तपश्चरणादि से मनुष्यों के शरीर कल्प-प्रलयतक बनें रहें तो उससे भी क्या लाभ ? इनके द्वारा सच्चा कल्याण या सुख सम्भव नहीं ॥ ६७ ॥

भक्तिर्भवे मरणजन्मभयं हृदिस्थं
स्नेहो न बन्धुषु न मन्मथजा विकाराः ।
संसर्ग दोषरहिता विजया वनान्ता
वैराग्यमस्ति किमितः परमर्थनीयम् ॥ ६८ ॥

६८—वैराग्य—कामादि विकार से रहित निर्जन वनमें शिव की भक्ति चाहते हैं ।

शङ्कर की हो भक्ति हृदय में जन्म मरण भय लेश न हो ।
फँसे मोह नहिं बन्धुजनों के कामविकारी क्लेश न हो ॥
निर्जन वन में वास करें संसर्ग दोश बचि निर्वाहें ।
और भला वैराग्य श्रेष्ठ क्या इससे उत्तम जो चाहें ॥

शिवजी में भक्ति करनी चाहिए, जन्म मत्यु का भय सदा हृदय में बना रहना चाहिए, बन्धु-बान्धवों के विषय में अनुराग नहीं करना चाहिए, काम-जन्य विकार स्त्री-परवशता आदि न होने चाहिए। संग-दोष से हीन अतएव निर्जन वन के भागों की शरण लेनी चाहिए। यदि इस प्रकार वैराग्य आ जाय तो इससे बढ़कर किसकी अभिलाषा की जाय ? किसी की नहीं, क्योंकि सर्वोत्तम उपाय वैराग्य ही है ॥ ६८ ॥

तस्मादनन्तमजरं परमं विकासि
तद्ब्रह्म चिन्तय किमेभिरसद्विकल्पैः ।
यस्यानुषङ्गिण इमे भुवनाधिपत्य-
भोगादयः कृपणलोकमता भवन्ति ॥ ६९ ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

६९—परब्रह्म का ध्यान—ब्रह्मसुख की प्राप्ति। (१)

इस कारण है उचित यही बस ब्रह्म ध्यान की चिन्ता हो।
अजर, अमर जो परम प्रकाशक उसकी सदा प्रसन्ता हो॥
प्रभु की कृपा कटाक्ष पाय मन परब्रह्म सुख पगता है।
तब भुवनों का भोग, राज सब तुच्छ भासने लगता है॥

जबकि वैराग्य ही इष्ट है तब तो अन्त-रहित, जरा-मरणादिहीन, सर्वोत्कृष्ट सर्वव्यापी होने से सर्वत्र विकसित या भासमान उस ब्रह्म का ही सर्वदा हे मन! चिन्तन किया कर, इन व्यर्थ के सन्देहजनक विचारों से क्या लाभ? कुछ भी नहीं। जिस ब्रह्म के साथ सम्बन्ध रखने वाले ये राज्य और लोकों का स्वामित्व और स्वर्गादि प्राप्ति रूप भोग आदि ब्रह्मविचार-शून्य हृदय वालों को ही इष्ट रहते हैं। ब्रह्मचिन्तनासक्त पुरुषों के लिए वे पदार्थ तुच्छ ही हैं॥ ६९ !!

पातालमाविशसि यासि नभो विलङ्घ्य
दिङ्मण्डलं भ्रमसि मानस ! चापलेन।
भ्रान्त्यापि जातु विमलं कथमात्मनीनं
न ब्रह्म संस्मरसि निर्वृतिमेषि येन ॥ ७० ॥

७०—परब्रह्म का ध्यान—परमानन्द देता है। (२)

चंचल चित, तू नीचे जाकर करता है पाताल-प्रवेश।
नभ को लाँघ चढ़े ऊपर को नहीं हिचकता है लवलेश॥
सैरें करता दिङ्-मण्डल की भूल न उर भीतर आता।
विमल ब्रह्म का ध्यान लगाकर जो परमानन्द राशि पाता॥

हे चित्त! तू अपनी चपलता से कभी पाताल में जो बहुत ही नीचे है—घुस जाता है, कभी गगन को—जो बहुत ऊँचा है—लाँघ कर जाता है तो कभी दिशाओं के मण्डल में चक्कर लगाता है। कभी भी आत्म हितकारी, निर्मल ब्रह्म का स्मरण क्यों नहीं करता जिससे आनन्द को प्राप्त कर सकता है॥ ७०॥

(नित्यानित्य वस्तुविचार)

किं वेदैः स्मृतिभिः पुराणपठनैः शास्त्रैर्महाविस्तरैः
स्वर्गग्रामकुटीनिवासफलदैः कर्मक्रियाविभ्रमैः।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मुक्त्वैकं भवदुःख-भाररचना-विध्वंसकालानलं
स्वात्मानन्दपदप्रवेशकलनं शेषैर्वणिग्वृत्तिभिः ॥७१॥

७१—परब्रह्म का ध्यान—ब्रह्मानन्द में प्रवेश किये बिना विद्या और कर्म निष्फल हैं। (३)

छप्पय

कहो कौन है लाभ पढ़े से श्रुति स्मृति अरु शास्त्र पुरान।
अथवा श्रेष्ठ ग्राम कुटिया बस किये यज्ञ आचार निधान॥
यदि किया उद्योग उदय हो आत्मा में आनन्द महान।
भवदुःखों को भस्म करे जो प्रलय काल की अग्नि समान॥
तो जितने भी कर्म हैं, वणिक् वृत्ति ही जानिये।
नहीं लाभदायक हुए, निष्फल यत्न बखानिये॥

ऋग्वेद-यजुर्वेद-सामवेद तथा अथर्ववेद इन चारों वेदों के अध्ययन से क्या प्रयोजन है ? कुछ भी नहीं। मनु-याज्ञवल्क्य आदि अष्टादश स्मृति और उपस्मृतियों के पर्यालोचन से क्या प्रयोजन ? कुछ भी नहीं। ब्रह्माण्डपुराण आदि पुराण तथा उपपुराणों के पठन-श्रवण से क्या फल ? कुछ नहीं। एवं अत्यन्त विस्तृत तर्क, व्याकरण प्रभृति, षड्दर्शन आदि शास्त्रों के चिन्तन से भी क्या काम ? कुछ भीं नहीं। जो वेदादि पुण्यात्माओं के निवासभूत स्वर्गस्थित ब्राह्मणादिकों के निवासरूप ग्राम एवं कुटी में निवास इन फलों के देनेवाले हैं तथा स्नान संध्या आदि कार्यों के आचरण-विलास हैं उनसे भी कोई प्रयोजन नहीं। जन्म-मरणरूप संसार से होने वाले दारिद्रय-पुत्रादि के नाश का जो भार अर्थात् असह्य दुःख उसकी रचना के नाश के लिए प्रलयकालिक अग्निरूप आत्मसुखानुभव के स्थान में प्रवेशमात्र करना ब्रह्मस्वरूप चिन्तन मात्र करनाही श्रेयस्कर है। इसी के द्वारा नित्य सुख की प्राप्ति होती है। और बाकी तो बनियों के व्यापार हैं अर्थात् एक के बदले दूसरा कुछ लेकर अपना छुटकारा कर लेना है॥ ७१॥

❀ नायं ते समयो रहस्यमधुना निद्राति नाथो यदि
स्थित्वा द्रक्ष्यति कुप्यति प्रभुरिति द्वारेषु येषां वचः।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चेतस्तानपहाय याहि भवनं देवस्य विश्वेशितु-
र्निदौंवारिकनिर्दयोक्त्यपरुषं निःसोमशर्मप्रदम् ॥

काशीवास,धनियों के तिरस्कार से बचने के लिये ।
अभी नहीं है समय, प्रभू एकान्त पधारे ।
सोच रहे हैं, लेटे हैं वा निद्रा मारे ॥
क्रोधित होंगे बहुत, यदि तुमको देखेंगे ।
हम भी आज्ञा पाय, तुम्हीं को धर खेदेंगे ॥
ऐसी कटुवाणी कहें, धनी द्वार सेवक निडर ।
त्यागहु इनकी आस अब, चलहु ईश विश्वेश घर ॥
ईशभवन पर द्वारपाल, है नहिं कटुभाषी ।
शिव देते हैं, सुख असीम, है ऋद्धी दासी ॥

यह तुमसे मिलने का समय नहीं है, इस समय एकान्त में हैं, कोई वहाँ नहीं जा सकता । स्वामी सो रहे है । यदि यहाँ तुम्हें स्थित हुआ देखेंगे तो स्वामी क्रुद्ध होंगे । इस प्रकार की बातें जिन प्रभुओं के द्वार पर कही जाती हैं । हे चित्त ! उनको छोड़कर विश्वेश्वर भगवान् महादेव के भवन (मन्दिर) पर जाओ, जहाँ द्वारपालों की निर्दय कठोर बातें सुनने को नहीं मिलती और जो असीम कल्याण देनेवाला है ।

यतो मेरुः श्रीमान्निपतति युगान्ताग्निवलितः
समुद्राः शुष्यन्ति प्रचुरमकरग्राहनिलयाः ।
धरा गच्छत्यन्तं धरणिधरपादैरपि धृता
शरीरे का वार्ता करिकलभकर्णाग्रचपले ॥७२॥

७२— शरीर की क्षणभंगुरता ।
प्रलयकाल के अग्निताप से बच सुमेरु नहिं पाता है ।
मकरादिक से भरा हुआ भी सिन्धु शुष्क हो जाता है ॥
धरणिधरों से धरी धरा का नाश अन्त में आता है ।
तब अति चंचल नर-शरीर को गिनती में को लाता है ? ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ब्रह्मचिन्तन अथवा स्वात्मसुखानुभव के अतिरिक्त सभी पदार्थ अनित्य हैं—इसको कवि इस प्रकार प्रकट करते हैं कि—जिस कारण से श्रीमान् सुवर्ण-रत्न प्रभृति मूल्यवान् वस्तुओं से पूर्ण मेरु अर्थात् सुमेरु पर्वत प्रलय काल की अग्नि से घिरा जाकर गिर पड़ता है, अत्यधिक मगर (नाक) घड़ियाल आदि भयानक जानवरों के रहने के स्थान उसी आग की लपट से सूख जाते हैं और महेन्द्रादि सप्त कुलपर्वतों के प्रत्यत्न पर्वतोंसे अच्छे प्रकार से रोकी गई पृथ्वीभी अन्त(नाश) को प्राप्त करती है। तब तो हाथी के बच्चे के कान के अग्र के समान अत्यन्त चंचल इस शरीर के विषय में बात ही क्या ? वह तो क्षणभंगुर ही है॥ ७२॥

गात्रं संकुचितं गतिर्विगलिता भ्रष्टा च दन्तावलि-
र्दृष्टिर्नक्ष्यति वर्धते बधिरता वक्त्रं च लालायते ।
वाक्यं नाद्रियते च बान्धवजनो भार्या न शुश्रूषते
हा ! कष्टं पुरुषस्य जीर्णवयसः पुत्रोऽप्यमित्रायते ॥७३॥

७३—काल की प्रबलता—बुढ़ापे में दुर्गति ।

तन सुकड़ा, आ गया बुढ़ापा चाल मन्द हुई, दाँत हले ।
अन्धे हुए, कान नहिं सुनते, होय निरादर, लार चले ॥
नारी भी सेवा नहिं करती, पुत्र शत्रु व्यवहार करे ।
बूढ़ा हुआ, हाय ! नर जग में कैसे-कैसे दुःख भरे ॥

बुढ़ापे से मनुष्य की बुरी अवस्था होती है—कवि इसको प्रदर्शित कर रहा है—शरीर बटुर गया अर्थात् झुक गया या टेढ़ा हुआ। चाल भी धीमी पड़ गई दाँतों की पाँत भी गिर गई। आँख नष्ट हो रही है अर्थात् आँख से भी साफ-साफ दिखाई नहीं पड़ता। बहिरापन बढ़ता ही जा रहा है। और मुख से सदा लार टपका करती है। भाई-बन्धु वचन का आदर नहीं करते अर्थात् कहने की ओर ध्यान ही नहीं देते। और स्त्री भी सेवा-शुश्रूषा नहीं करती। बूढ़े आदमी का पुत्र भी शत्रु के समान व्यवहार करता है। बूढ़ापा बहुत ही कष्टदायक है॥ ७३॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वर्णं सितं शिरसि वीक्ष्य शिरोरुहाणां
स्थानं जरापरिभवस्य तदा पुमांसम् ।
आरोपितांस्थिशतकं परिहृत्य यान्ति
चण्डालकूपमिव दूरत रं तरुण्यः ॥ ७४ ॥

७४—तरुणियाँ बूढ़ों को दूर से ही छोड़ देती हैं ।
जिन पुरुषों के सिर के सुन्दर केश धवल हो जाते हैं ।
जो कि वृद्धतावश लोगों से सदा अनादर पाते हैं ॥
अस्थिशतक से भरे उन्हें चण्डाल कूप की भाँति सभी ।
नई युवतियाँ जानि भूल से भी भजती हैं नहीं कभी ॥

तरुण स्त्रियाँ जब पुरुष के मस्तक पर केशों का सफेद रंग (श्वेतवर्ण) देखती हैं तब जरा से अपमान के स्थानस्वरूप बाहर से स्पष्ट दिखाई पड़ने से मालूम पड़ता है कि मानो सैकड़ों हड्डियाँ इस पर चढ़ाई गई हैं ऐसे पुरुष को फेंकी गई हड्डियों के टुकड़ों से भरे चण्डाल जाति के कूप के समान दूर से त्याग कर चली जाती हैं अर्थात् तरुणियाँ वूढ़ों को दूर से छोड़ देती हैं ॥७४॥

यावत्स्वस्थमिदं शरीरमरुजं यावच्च दूरे जरा
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः ।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्
सन्दीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः ॥ ७५ ॥

७५—ईश्वरोपासना–निरोग और स्वस्थ रहते अपने कल्याण के लिये यत्न कर लेना चाहिए ।
जब तक स्वस्थ शरीर रोग बिन जब तक जरा अवस्था दूर ।
जब तक शक्ति भरी इन्द्री हैं दीखे आयु शेष भरपूर ॥
आत्मश्रेय के लिये तभी तक पण्डित कर ले यत्न महान् ।
'आग लगे पर कूप खनन की' नहिं तो होगी बात प्रमान ॥

जब तक यह शरीर स्वस्थ और रोगरहित है और जब तक वृद्धावस्था भी दूर है, तथा जब तक सभी इन्द्रियों की शक्ति बेरोकटोक पूरी—है एवं जब तक

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आयु का नाश नहीं हुआ है। इसी बीच तभी तक बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि आत्मकल्याण के लिए वह महान् प्रयत्न करे। क्योंकि घर में आग लग जाने पर कूएँ के खोदवाने में प्रयत्न करना या उद्यम करना कैसा ? जैसा आग लगने पर कूआँ खोदवाना निरी मूर्खता है वैसे ही तारुण्य में श्रेयस्कर काम न कर वृद्धावस्था में उसकी चेष्टा करना भी मूर्खता है ॥ ७५ ॥

तपस्यन्तः सन्तः किमधिनिवसामः सुरनदीं
गुणोदारान् दारानुत परिचरामः सविनयम् ।
पिबामः शास्त्रौघानुत विविधकाव्यमृतरसान्
न विद्मः किं कुर्मः कतिपयनिमेषायुषि जने ॥७६॥

७६—जीवन की अल्पता—अल्प आयु में क्या क्या किया जाय।
करूँ तपस्या गङ्गातट पर, ध्यानावस्थित रहूँ वहीं।
अथवा प्रेममत्त हो विचरूँ, गुणी नारियों बीच कहीं ॥
शास्त्र समूहों का आनँद लूँ, विविध काव्यरस पान करूँ।
नहीं समझता अल्पआयु पा, क्या-क्या करता काम फिरूँ ॥

कुछ ही क्षण की आयुवाले जनसमुदाय में हमलोग क्या-क्या करें—यह नहीं जानते। क्या हम लोग तपस्या करते हुए केवल सुरनदी (गङ्गाजी) के तट पर वैराग्य से रहें ? अथवा क्या सौभाग्य-सुशीलता आदि गुणों से सुन्दर भार्या का सांसारिक धर्म से अनुसरण करें ? किंवा शास्त्रों के ओघों अर्थात् समूहों का तात्पर्य हृद्गत कर लें ? या अनेक प्रकार के काव्यों में रहने वाले अमृततुल्य रसों का पान अर्थात् आस्वादन करें ?—यह समझ में नहीं आता कि क्या करना चाहिए और उस समय हम क्या किया करते हैं ॥ ७६ ॥

दुराराध्याश्चामी तुरगचलचित्ताः क्षितिभुजो
वयं तु स्थूलेच्छाः सुमहति फले बद्धमनसः ।
जरा देहं मृत्युर्हरति दयितं जीवितमिदं
सखे ! नान्यच्छ्रेयो जगति विदुषेऽन्यत्र तपसः ॥७७॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

७७—परब्रह्म का ध्यान—ज्ञानवान को केवल तपस्या ही कल्याणकारी है।

तुरगभाँति चञ्चल चित नृप का रहता सेवा में जी खटका।
आकांक्षा भारी फिर अपनी बड़े फलों में जी अटका॥
जरा देह की, मृत्यु जीव की हिला रहीं दिन रात जड़ें।
ज्ञानीजन को छोड़ तपस्या कहीं श्रेय नहिं जान पड़े॥

घोड़े के समान चंचल चित्तवाले इन राजाओं की आराधना अति ही कठिन है अर्थात् सेवा द्वारा भी राजसमूह के चंचल चित्त को अपने अनुकूल नहीं बना सकते। हम लोग तो बड़ी इच्छावाले अतएव अति महान् फल की ओर मन लगाये हुए हैं अर्थात् बहुत धन चाहते हैं किन्तु वे नहीं देंगे। तथा जरा शरीर को क्षीण करती हैं और मृत्यु इस प्यारे जीवन को ही हरती है। अतः हे मित्र! विद्वान् को जगत् में तपस्या से अतिरिक्त दूसरा कोई उत्तम मोक्ष-साधन नहीं है॥ ७७॥

माने म्लायिनि खण्डिते च वसुनि व्यर्थे प्रयातेऽर्थिनि
क्षीणे बन्धुजने गते परिजने नष्टे शनैर्यौवने।
युक्तं केवलमेतदेव सुधियां यज्जह्नुकन्यापयः-
पूताग्रावगिरीन्द्रकन्दरतटीकुञ्जे निवासः क्वचित्॥७८॥

७८—वैराग्य—सांसारिक भोग नष्ट होने पर गङ्गाकिनारे कुटी में निवास करना उचित है। (१)

याचक फिरने लगें विमुख जब अरु हो जाय प्रतिष्ठा भंग।
नाश जाय धन, तजें कुटुम्बी, परिजन चलें छोड़कर संग॥
धीरे-धीरे घटे जवानी बुद्धिमान तब चित्त धरे।
गङ्गाजल पवित्र गिरि कन्दर जा कुटिया में बास करे॥

सम्मान के कम होने पर, धन के नाश होने पर, याचक के निराश होकर निरर्थक चले जाने पर, अन्न आदि के अभावमें आश्रित पुत्र-पौत्रादि बन्धुजन के क्षीण (कम) होने पर, सेवक वर्ग के चले जाने पर और धीरे-धीरे जवानी के ढल जाने पर विद्वानों को केवल यही एक योग्य है कि जह्नु कन्या = जाह्नवी

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अर्थात् गङ्गाजी के जल से पवित्र पत्थर वाले गिरीन्द्र हिमालय पर्वत की गुहा के बाहरी किनारे पर रहनेवाले किसी कुंज में निवास करना। सांसारिक वस्तुओं की कमी में हिमालय के आस-पास कुंज में आश्रय लेकर आत्मानुसंधान करना ही सर्वोत्कृष्ट कार्य बुद्धिमान के लिए शेष रह जाता है ॥७८॥

रम्याश्चन्द्रमरीचयस्तृणवती रम्या वनान्तस्थली
रम्यं साधुसमागमागतसुखं काव्येषु रम्याः कथाः।
कोपोपाहितबाष्पबिन्दुतरलं रम्यं प्रियाया मुखं
सर्वं रम्यमनित्यतामुपगते चित्ते न किञ्चित्पुनः ॥७९॥

७९—वैराग्य–संसार की अनित्यता का ध्यान आते ही सुन्दर वस्तुओं से रुचि हट जाती है। (२)

लगती चन्द्रकिरण अति प्यारी हरी दूब-पूर्ण धरती।
साधुसमागम सुख देता है काव्य कथा हर्षित करती॥
कोपयुक्त डबडबे नेत्र लखि वदन प्रिया हो रम्य महान।
पर सब सुन्दर होय असुन्दर आते जग अनित्यता-ध्यान॥

चन्द्रमा की किरणें मनोहारिणी हैं। कोमल घासवाली वन के बीज की प्राकृतिक भूमि भी सुन्दर है। उपकारी या सज्जन व्यक्ति के आगमन से प्राप्त सुख भी रम्य है। काव्यों में निबन्ध कथानक भी रमणीय हैं। प्रणय-कलह में क्रोध से उत्पन्न और नेत्र के कोने में टिकी हुई आँसुओं की बूँदों से चञ्चल प्रिया का मुख भी मन को हरनेवाला है। किन्तु चित्त के नित्यानित्य-वस्तु के विचार में लीन होने पर सभी रमणीक पदार्थ कुछ भी शोभन नहीं रह जाता अर्थात् सुन्दर वस्तुओं की अनित्यता जान लेने पर चित्त को कुछ भी रुचता नहीं या अच्छा नहीं लगता ॥७९॥

रम्यं हर्म्यतलं न किं वसतये श्रव्यं न गेयादिकं
किं वा प्राणसमासमागमसुखं नैवाधिकप्रीतये।
किन्तु भ्रान्तपतङ्गपक्षपवनव्यालोलदीपाङ्कुर-
च्छायाचञ्चलमाकलय्य सकलं सन्तो वनान्तं गताः ॥८०॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

८०—वैराग्य—भोगादि को चंचल जान राजमहल त्याग वन को चले आये। (३)

छप्पय

थी नहिं बढ़िया महल अटारी रहने को क्या स्वर्ग समान।
प्रिया प्रेम-पूर्ण ऐसी थी सुख की खानि, सुभग, गुणवान।।
अति अनुपम संगीत गोष्ठ भी समझ तुच्छ सब त्याग दिया।
किया जाय वनवास सन्तजन रह एकान्त वैराग्य लिया।।
शलभ पंख की पवन से, दीपशिखा जैसे हिले।
ऐसी चंचल वस्तु सब, हृदय जानि वन को चले।।

महल का उपरी भाग रहने के लिये रम्य नहीं है क्या ? अवश्य ही रम्य है। गेयादिक गायन-वादन आदि सुनने योग्य नहीं है क्या ? निश्चय ही श्रव्य है। अथवा प्राण के समान प्रिय प्रियतमा के समागम अर्थात् संभोग से होने वाला सुख अधिक प्रेम के लिए नहीं होता क्या ? अर्थात् होता ही है। किन्तु इतना होने पर भी सन्त लोग सकल विषयों को घूमने वाले फतिंगे के पंखों से निकलने-वाली हवा से अति चंचल दीपक के अग्र के समान चंचल अर्थात् नश्वर सोच-विचार कर वन में श्रेय साधन के लिए गये ।।८०।।

(शिवार्चन)

आ संसारात् त्रिभुवनमिदं चिन्वतां तात ! तादृङ्
नैवास्माकं नयनपदवीं श्रोत्रमार्गं गतो वा ।
योऽयं धत्ते विषयकरिणो गाढगूढाभिमान-
क्षीवस्यान्तःकरणकरिणः संयमालानलीलाम् ।।८१।।

८१–वैराग्य–जब तक अभिमान है अन्तःकरण वश में नहीं रह सकता। (४)

आदिकाल से जग में खोजा, ढूंढ़ा भुवन तीन के बीच।
सुना न देखा नर ऐसा जो मन मतंग तब लेवें खींच ।।
विषय हस्तिनी में जब रत हो सुरा गाढ अभिमान पिये।
अन्तःकरण मस्त हाथी को उस काल हिये ।।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हे भाई ! इस संसार के अर्थात् मनुष्य प्राणियों के आरम्भ से लेकर स्वर्ग-मृत्यु पाताल रूप तीनों भुवनों में अन्वेषण करनेवाले हम लोगों के नेत्रों से देखने में या कानों से सुनने में वैसा पुरुष कोई भी नहीं आया जो कि सांसारिक वस्तु-रूप हथिनी पर अत्यन्त घना और गुप्त अपनेपन के अभिमान से मतवाले अन्तः-करण रूप हाथी को बाँधने के लिए बन्धन की लीला को करता है अर्थात् विषयों की ओर से मन को रोकने वाला कोई पुरुष त्रिभुवन में न दिखाई पड़ा और न सुनाई ही पड़ा ॥ ८१ ॥

यदेतत्स्वच्छन्दं विहरणमकार्पण्यमशनं
सहार्यैः संवासः श्रुतमुपशमैक व्रतफलम्
मनो मन्दस्पन्दं बहिरपि चिरस्यापि विमृश-
न्न जाने कस्यैषा परिणतिरुदारस्य तपसः ॥८२॥

८२—वैराग्य पूर्व तप का फल है।

हो स्वछन्द विचरना जग में बिना दैन्य भोजन पाना।
संग संत का, का शास्त्रपाठ वह जिसका फल शान्ती लाना ॥
मन यदि बाहर चला जाय तो भीतर रखना हो ठाना।
कौन श्रेष्ठ तप के ये फल हैं बहुत बिचारा नहिं जाना ॥

स्वछन्द रूप से किसी के दवाव से नहीं किन्तु अपनी इच्छा से बिहार करना या घूमना, दीनता के विना भिक्षा से प्राप्त अन्न अथवा कन्दमूल का आहार आर्य = ज्ञान-विज्ञान सम्पन्न विद्वानों के साथ रहना, शान्ति ही मुख्य रूप से व्रत का फल कहने वाले वेदान्तादि शास्त्रों का श्रवण करना, अन्तर्मुख होने से मन का वाहर में वहुत ही कम फैलना, यह सब किस महान् तपश्चरण का परि-णाम है—चिरकाल तक विचार करता हुआ मैं नहीं जान पा रहा हूँ ॥ ८२ ॥

जीर्णा एव मनोरथाश्च हृदये यातं च तद्यौवनं
हन्ताङ्गेषु गुणाश्च बन्ध्यफलतां याता गुणज्ञैर्विना ।
किं युक्तं सहसाऽभ्युपैति बलवान् कालः कृतान्तोऽक्षमी
हा!ज्ञातं मदनान्तकाङ्घ्रियुगलं मुक्त्वास्ति नान्यो गतिः।८३।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

८३—काशीवास—निराशा में शिवचरणों का ही आसरा है (१)

हिरदे हो गये जीर्ण मनोरथ युवा अवस्था चली गयी ।
गुणग्राहक के विना गुणों को मन में ही खा गई छयी ।।
असहनशील कराल काल जम सा जल्दी बढ़ता आता ।
काम-शत्रु शङ्कर के पद तजि नहीं गती दूजी पाता ।।

कामनाएं मन में ही लुप्त हुई, वह यौवन भी चला गया गुणग्राहकों के विना विद्या-विनय आदि गुण शरीर ही में निष्फल हो गये यह बड़े खेद का विषय है। वली, काल स्वरूप, असहनशील यम अकस्मात् प्राण लेने के लिए आ पहुँचाता है तो अब क्या उचित है ? हाँ, ध्यान में आया कि शिवजी के चरण-युगल को छोड़कर दूसरी कोई वस्तु शरण नहीं। संसार से उद्धार पाने के लिये बस केवल शिवजी के चरण ही रक्षण करने वाले हैं ।। ८३ ।।

महेश्वरे वा जगतामधीश्वरे जनार्दने वा जगदन्तरात्मनि ।
न वस्तुभेदप्रतिपत्तिरस्ति मे तथापि भक्तिस्तरुणेन्दुशेखरे ।८४

८४—काशीवास—शिवजी के चरणकमल में मेरी भक्ति हो। (२)

जगत अधीश्वर गिरिजापति वा कमलापति अन्तर्यामी ।
नहीं भेद कुछ मुझको इनमें अखिल विश्व के हैं स्वामी ।।
तथापि चाहूँ भक्ति चरण की सुलभ सुफल, सद्गुणखानी ।
तरुण इन्दु भूषण है जिनका दयासिन्धु औघड़दानी ।।

चतुर्दश भुवनों के स्वामी शिवजी, ब्रह्माण्ड को उदर में रखनेवाले विष्णुजी इन दोनों में ये दो अलग-अलग वस्तुएं हैं—ऐसी मुझमें भेद-बुद्धि नहीं है, तथापि वाल (कलामात्र) चन्द्र को सिर में धारण करनेवाले शिवजी पर ही मेरी श्रद्धा है। हरि-हर के सम्बन्ध में अपने मन में भेदभाव न होते हुए भी मेरा भक्तिभाव भगवान् शिवजी पर ही है ।। ८४ ।।

स्फुरत्स्फारज्योत्स्नाधवलिततले क्वापि पुलिने
सुखासीनाः शान्तध्वनिषु रजनीषु द्युसरितः ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भवाभोगोद्विग्नाः शिव शिव शिवेत्युच्चवचसः
कदा यास्यामोऽन्तर्गतबहुल-बाष्पाकुलदशाम् ॥८५॥

८५–काशीवास–हम कब गङ्गाद्वीप पर, एकान्त में, शिव शिव रटते हुए, आनन्दित होंगे । (३)

कौन घड़ी वह होगी जब हम गङ्गाद्वीप विचर सुनसान ।
धवल चन्द्रिका, सुख आसन में पावेंगे आनन्द महान ॥
दुनियाँ के दुःख से व्याकुल हो शिव-शिव टेर लगावेंगे ।
होकर आत्मालीन, प्रेम से आनन्दाश्रु बहावेंगे ॥

पशु-पक्षी आदि के कोलाहल से रहित अर्थात् सुनसान रात्रियों में प्रकाशमान और बढ़ी हुई चाँदनी से धवल प्रदेशवाले स्वर्गनदी = गङ्गाजी के किसी बालू वाले तट पर सुखपूर्वक बैठे हुए, संसार के विस्तार से घबड़ाए हम "शिव, शिव शिव" इस प्रकार ऊँचे स्वर से चिल्लाते हुए किस समय मन के भीतर लीन बहुत से आनन्दाश्रु द्वारा आकुल दशा को पावेंगे अर्थात् कब स्वात्मानन्दानुभव करने लगेंगे । जब ऐसी स्थिति प्राप्त होगी तभी तो सच्चा कल्याण है ॥८५॥

*महादेवो देवः सरिदपि च सैषा सुरसरिद्-
गुहा एवागारं वसनमपि ता एव हरितः ।
सुहृद्वा कालोऽयं व्रतमिदमदैन्यव्रतमिदं
कियद्वा वक्ष्यामो वटविटप एवास्तु दयिता ॥

काशीवास—राजर्षि भर्तृहरिजी की इच्छा । (४)

शिव केवल आराध्य देव हों सुरसरि के हों नित असनान ।
कन्दर घर हो, दिक्पट ओढ़ूं काल सखा हो एक सुजान ॥
दैन्य न होना हो व्रत अपना रहूँ प्रभू शङ्कर का दास ।
और कहाँ तक कहूँ विटप वट में रक्खूं भार्या का भास ॥

मेरे लिए महादेव–देवता, गङ्गाजी—नदी, गुफा–गृह, दिशायें = वस्त्र, मित्र–काल, व्रत–दीनभाव न दिखाने का व्रत है । और क्या कहूँ (सुख-सुविधा पहुँचाने के कारण) वटवृक्ष ही भार्या की भाँति प्रिय है ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वितीर्णे सर्वस्वे तरुणकरुणापूर्णहृदयाः
स्मरन्तः संसारे विगुणपरिणामां विधिगतिम् ।
वयं पुण्यारण्ये परिणतशरच्चन्द्रकिरणा-
स्त्रियामा नेष्यामो हरचरणचित्तैकशरणाः ॥८६॥

८६—काशीवास—मैं किस दिन अकिञ्चन हो रात्रि भर शिव चरणों का ध्यान करूँगा । (५)

देकर के सर्वस्व-दान करुणा से भर कर ।
विधि-गति का परिणाम जान जग में सब नश्वर ॥
शरच्चन्द्र से खिले पुण्य वन कब जायेंगे ?
रातों में धरि ध्यान शम्भु महिमा गायेंगे ॥

सम्पूर्ण धन याचकों को देने पर उत्कट दया से पूर्ण हृदय वाले, संसार में दैवगतिको दुष्परिणाम वाली स्मरण करने वाले हम किसी पुण्य वन में शिवजी के चरणों का चिन्तन मात्र शरणवाले होते हुए चारों ओर से शरद ऋतु के चन्द्रमा की किरणों से पूर्ण रात्रियों को कब विताने लगेंगे । ऐसी दशा हमको कब प्राप्त होगी ? क्योंकि वही स्थिति प्राप्त करना अपना कर्तव्य है ॥ ८६ ॥

कदा वाराणस्याममरतटिनीरोधसि वसन्
वसानः कौपीनं शिरसि निदधानोऽञ्जलिपुटम्
अये ! गौरीनाथ ! त्रिपुरहर ! शम्भो ! त्रिनयन !
प्रसीदेत्याक्रोशन्निमिषमिव नेष्यामि दिवसान् ॥८७॥

८७—काशीवास—कब हम शिवभजन करते हुए दिन काटेंगे । (६)

छप्पय

कब गङ्गातट वसि काशी में पहिरेंगे केवल कोपीन ।
शिर से अंजलि जोड़, पुकारेंगे शङ्कर को हो अति दीन ॥
गौरीनाथ, त्रिपुरहर, शम्भो, त्रिनयन हे करुणासागर ।
हो जाओ प्रसन्न भवमोचन शशिशेखर लीला, आगर ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मगर ध्यान कब रहेंगें, भज शिव बारम्बार।
दिन काटेंगें निमिष सम, प्रमुदित रह संसार॥

वाराणसी (काशी) में सुरनदी गङ्गाजी के तट पर रहता हुआ, कौपीन अर्थात् लँगोट या लँगोटी पहिर कर मस्तक पर अञ्जलि करता हुआ अर्थात् प्रणाम करता हुआ–"हे गौरी = पार्वती के नाथ, त्रिपुर नामक (आकाशगामी तीन पुरों में रहकर युद्ध कामना से प्रस्तुत) राक्षस का अन्त करनेवाले, शम्भु (सुख उत्पन्न करनेवाले), तीन नेत्रवाले (तृतीय नयन काम दाह के समय प्रकट करने वाले) शिवजी ! प्रसन्न होइये अर्थात् मुझ पर दया करिये–" ऐसे चिल्लाता हुआ कब दिनों को पल के समान वितावेंगे अर्थात् शिव-तन्मयता की प्राप्ति कब होगी—इसीलिये दया करिये ॥८७॥

***उद्यानेषु विचित्रभोजनविधिस्तीव्रातितीव्रं तपः**
कौपीनावरणं सुवस्त्रममितं भिक्षाटनं मण्डनम् ।
आसन्नं मरणं च मङ्गलसमं यस्यां समुत्पद्यते
तां काशीं परिहृत्य हन्त विबुधैरन्यत्र किं स्थीयते ॥

काशीवास—घोर तप करने के लिये। (७)
जा उपवन नाना फल खाना महाघोर तप करना।
वस्त्र लँगोटी ही अति सुन्दर भिक्षाटन ही गहना॥
मरण जहाँ का है मङ्गलमय काशीवास पियारा।
छोड़ इसे क्यों जाते पण्डित हैं, आश्चर्य हमारा॥

जहाँ पर वगीचों में अनेक प्रकार भोजन का विधान ही तीव्र से अति तीव्र तप है, कौपीन मात्र ही सुन्दर वस्त्र है, भिक्षाटन ही वहुत अधिक मण्डन (भूषण) है, मरणासन्न होना– मङ्गल के समान होता है, उस काशी को छोड़कर खेद है विद्वान लोग अन्यत्र क्यों रहते हैं।

स्नात्वा गाङ्गैः पयोभिः शुचिकुसुमफलैरर्चयित्वा विभो! त्वां
ध्येये ध्यानं निवेश्य क्षितिधरकुहरग्रावपर्यङ्कमूले ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आत्मारामः फलाशी गुरुवचनरतस्त्वत्प्रसादात् स्मरारे ?
दुःखं मोक्ष्ये कदाहं समकरचरणे पुंसि सेवासमुत्थम् ॥८८॥

८८—काशीवास-मैं कब एकान्त में स्थित हो शिवजी की पूजा व ध्यान में मन लगाऊँगा और धनियों की सेवा के दुःख से छूटूँगा। (८)

छप्पय

कौन घड़ी वह जब मैं गङ्गाजल से करि असनान।
सुन्दर फल-फूलों से तुमको पूजूँगा हे कृपानिधान॥
पाहन आसन बैठि कन्दरा मन में ध्यान जमाऊँगा।
आत्माराम फलाशी होकर गुरु-आयसु प्रतिपालूँगा॥
कब कामारे! आपकी, करुणा से सुरनाथ।
छूटेंगे दुःख सहैं जो, धनपतियों के हाथ॥

हे प्रभो ! गङ्गा के जलों से स्नान कर अर्थात् शुद्ध होकर पवित्र फूल और फलों से तुम्हारी पूजा कर पहाड़ की गुफाओं के पत्थर रूप सुखशय्या के ऊपर बैठकर ध्यान करने के योग्य तुम्हारे चरण-कमलों में ध्यान लगाकर अपनी आत्मा में ही रमनेवाला, फलमात्र भक्षण करने वाला, गुरुजी के द्वारा उपदिष्ट कर्म का आचरण करता हुआ मैं हे कामशत्रु शिवजी, तुम्हारे अनुग्रह या कृपा से मकर-रेखाङ्कित चरण वाले पुरुष अर्थात् भाग्यवान् श्रीमान् राजा-महाराजा आदि की सेवा से उत्पन्न दुःख को कब छोड़ूँगा। तात्पर्य यह है कि जिस समय तुम्हारी दया हो जायगी उस समय श्रीमानों के आश्रय पाने में जो दुःख मिला वह सब दूर हो जायेगा। अतएव कृपा करिये ॥८८॥

एकाकी निःस्पृहः शान्तः पाणिपात्रो दिगम्बरः।
कदा शम्भो ! भविष्यामि कर्मनिर्मूलनक्षमः ॥८९॥

८९—काशीवास—कब हम कर्मों की जड़ उखाड़ने में समर्थ होंगे ? (९)

हे शम्भो, काटूंगा कब मैं कर्ममूल अति दुष्कर।
बनू असङ्ग शान्त, करपात्री इच्छा तजि तव किंकर॥

एकाकी = अकेला अर्थात् [illegible] विषयाभिलाशसे पराङ्मुख अत-

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

एव शान्त, हाथ ही को पात्र बनाकर तन्मात्र से उदर पोषण करने वाला अर्थात् करपात्री, दिगम्बर अर्थात् वस्त्ररहित होकर जब मैं संचित तथा प्रारब्ध कर्मों के मूलच्छेदन में हे शिवजी, समर्थ होऊँगा। ये सब बातें ईश्वर-साक्षात्कर के विना कर्मक्षय न होने तक असंभव है अतएव दर्शन दीजिए ॥८९॥

पाणिं पात्रयतां निसर्गशुचिना भैक्षेण सन्तुष्यतां
यत्र क्वापि निषीदतां बहुतृणं विश्वं मुहुः पश्यताम् ।
अत्यागेऽपि तनोरखण्डपरमानन्दावबोधस्पृशा
मध्वा कोऽपि शिवप्रसादसुलभः सम्पत्स्यते योगिनाम् ॥९०॥

९०—काशीवास—शिवजी के प्रसाद से योगियों को ब्रह्मसुख सुलभ है। (१०)

कर का पात्र बना प्रसन्न हो करते अति शुचि भिक्षाहार।
तृण समान जग समझ पधारें जहाँ कहीं इच्छा अनुसार॥
अनुभव परमानन्द अखंड का बिना देह त्याग पाते।
शिवप्रसाद से योगीजन जब मार्गश्रेष्ठ में लग जाते॥

हाथ ही का भोजन का पात्र बनाने वाले, स्वभावतः पवित्र भिक्षा में प्राप्त वस्तुओं से सन्तुष्ट रहनेवाले, जहाँ कहीं वैठनेवाले, संसार को बार-बार तृण के समान देखने-समझने वाले, शरीर का त्याग करने पर भी अर्थात् शरीर सम्बन्ध रहते हुए भी अखण्ड परम आनन्द अर्थात् ब्रह्मानन्द के अनुभव का स्पर्श करने वाले अर्थात् अखण्ड ब्रह्मानन्द का आस्वाद लेनेवाले योगियों का कोई मार्ग शिवजी के अनुग्रह से सुलभ या सरल बन जायगा ॥९०॥

(अवधूतचर्या)

कौपीनं शतखण्डजर्जरतरं कन्था पुनस्तादृशी
नैश्चिन्त्यं निरपेक्षभैक्षमशनं निद्रा श्मशाने वने ।
स्वातन्त्र्येण निरङ्कुशं विहरणं स्वान्तं प्रशान्तं सदा
स्थैर्यं योगमहोत्सवेऽपि च यदि त्रैलोक्यराज्येन किम् ॥९१॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

९१–काशीवास–यदि योग महोत्सव में चित्त स्थित है तो तीन लोक का राज्य किस काम का ? (११)

कौपीन हुई शतखण्डी है गुदड़ी के भी कपड़े फटते ।
जब भिक्षा मिलती बिन माँगे मरघट में, बन में दिन कटते ।।
जब मन रहता शान्तिपूर्ण अरु इच्छित थल को जा सकते ।
तो त्रिभुवन राज्य करेंगे क्या ? हम योग-महोत्सव चित रखते ।।

अनेक टुकड़े होने से बहुत पुराना लंगोट यदि है, फिर वैसी ही फटी पुरानी कन्था अर्थात् बिना बाँह का शरीर पर का पहिरने का साधुओं का कुर्ता या अँगरखा यदि है, विषय-वासना के होने से निश्चिन्तता यदि है, अनुसरण की अपेक्षा बिना यदि भिक्षा में मिली वस्तु का भोजन है महावन या श्मशानभूमि में सुलभ निद्रा यदि प्राप्त है, अपनी इच्छा के अनुसार बिना किसी रोक-टोक के विहार यदि हो सकता है, चित्त यदि सदा शान्त अर्थात् प्रसन्न है और यदि समाधिरूप उत्सव में भी स्थिरता बनी हुई या अटल है फिर उसे त्रिभुवन के राज्य की प्राप्ति से क्या लाभ है ? कुछ नहीं, क्योंकि इसके सामने त्रिभुवन का राज्य भी तुच्छ है ।।९१।।

ब्रह्माण्डं मण्डलीमात्रं किं लोभाय मनस्विनः ।
शफरीस्फुरितेनाब्धिः क्षुब्धो न खलु जायते ।। ९२ ।।

९२—संतोष—संतोषी को लोभ नहीं । (१)

दोहा

मिले कहीं जगराज भी, नहीं मनस्वी लोभ ।
कूदे शफरी मीन के, सागर होत न छोभ ।।

विम्बमात्र अर्थात् भासमान चतुर्दशभुवनात्मक ब्रह्माण्ड क्या गम्भीर योगी के लोभ अर्थात् लालच के लिए हो सकता है ? उसको ब्रह्माण्ड भी लालच नहीं दे सकता, दूसरे पदार्थों की बात क्या रही । समुद्र मछली की उछल-कूद से कभी भी चंचल या तरङ्गित नहीं होता, गम्भीर ही बना रहता है ।।९२।।

मातर्लक्ष्मि ! भजस्व कञ्चिदपरं मत्काङ्क्षिणी मास्म भू-
र्भोगेषु स्पृहयालवस्तव वशे का निःस्पृहाणामसि ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सद्यः स्यूतपलाशपत्रपुटिकापात्रैः पवित्रीकृतै-
र्भिक्षावस्तुभिरेव सम्प्रति वयं वृत्तिं समीहामहे ॥९३॥

९३—संतोष—निस्पृह विरक्तों के लिये लक्ष्मी किस काम का। (२)

खोज किसी को लक्ष्मी माता, तज दे मेरी तो अब आस।
भोगों की इच्छा वाले ही पुरुष रहेंगें तेरे दास॥
पर जो हैं निस्पृह विरक्त उनके आवेगी तू किस काम।
तन रक्खेगें भिक्षा ले हम, नव पलास-पुट कर में थाम॥

हे माँ लक्ष्मी जी ! किसी दूसरे भाग्यवान् पुरुष की सेवा कर, मुझे चाहने वाली मत हो। विषयों के उपभोग में रत या इच्छुक पुरुष तुम्हारे वश में हैं। निःस्पृह लोगों की तुम कौन होती हो ? कोई नहीं, इस समय तो हम तत्काल वनाये पलाश के पत्त की दोना पतरी पर प्रोक्षणादि द्वारा पवित्र की हुई भिक्षा की वस्तुओंसे ही अपनी जीविका को चलाना चाहते हैं ॥९३॥

महाशय्या पृथ्वी विपुलमुपधानं भुजलतां
वितानं चाकाशं व्यजनमनुकूलोऽयमनिलः।
शरच्चन्द्रो दीपो विरतिवनितासङ्गमुदितः
सुखी शान्तः शेते मुनिरतनुभूतिर्नृप इव ॥ ९४ ॥

९४—काशीवास—शान्त पुरुष अपनी वैराग्य रूपी स्त्री के साथ राजाओ के समान सुख से सोते हैं। (२)

जिनकी शय्या चौड़ी पृथ्वी हाथ निराला है तकिया।
नभ का तम्बू तना अनोखा वायू का पंखा बढ़िया॥
शरद चन्द्र का दीप रहा जल विरक्ति दारा संग लिये।
मुनि सोवें मन-मुदित शान्त हो ठाट महा सम्राट किये॥

पृथ्वी एक बड़ी सेज है, बाँह एक विस्तीर्ण तकिया है, और आकाश ऊपर टँगा जाने वाला चँदवा है, इच्छानुकूल चलनेवाले यह पवन ही पंखा है, शरद काल का अत्यन्त प्रकाशमान चाँद ही दीप है, विरक्ति (वैराग्य) रूप स्त्री के

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सङ्ग से हर्षित, शान्तस्वभाव, मुनि अधिक सम्पत्ति से परिपूर्ण महाराजा की तरह आनन्दित हो निःशङ्क सोता है ॥९४॥

भिक्षाशी जनमध्यसङ्गरहितः स्वायत्तचेष्टः सदा
हानादानविरक्तमार्गनिरतः कश्चित्तपस्वी स्थितः ।
रथ्याकीर्णविशीर्णजीर्णवसनः सम्प्राप्तकन्थासनो
निर्मानो निरहङ्कृतिः शमसुखाभोगैकबद्धस्पृहः ॥ ९५ ॥

९५—काशीवास—तपस्वी की रहन। (३)

भिक्षाटन करि भोजन करना ही असङ्ग रहना जन माहिं।
दृढ़ता से इन्द्रिन को कसना हानि लाभ में स्वारथ नाहिं ॥
फटे पुराने वस्त्र मार्ग के उठा जोड़ गुदड़ी रचना।
अहङ्कार, अभिमान आदि से शून्य सदा मन को रखना ॥
मन को स्थिर कर बाँधना, शान्ति सुक्ख में खींच।
यों कोउ बिरला तपधनी रह सकता जग बीच ॥

भिक्षा में मिले अन्न से शरीर धारण करनेवाला, लोगों में विशेष रुचि न होने से सङ्गहीन, सर्वदा अपना काम स्वयं करनेवाला या स्वेच्छा से विहार भ्रमण करने वाला, त्याग और ग्रहण में वैराग्यमार्ग में आसक्त, मार्ग या गलियों में वेकार होने से फेंके, फटे पुराने वस्त्र से शरीर को ढकनेवाला कन्था को मोड़-माड़ कर बनाये आसन पर बैठा हुआ अतएव मान (आदर) से रहित अहङ्कार से दूर, वैराग्य द्वारा चित्त के विकार नष्ट होने से मिलनेवाले ब्रह्मानन्दके आस्वादन मात्र की वासना में बँधा हुआ कोई ही योगीश्वर निर्भय दशामें स्थित होता है ॥९५॥

चण्डालः किमयं द्विजातिरथवा शूद्रोऽथ किं तापसः
किं वा तत्त्वविवेकपेशलमतिर्योगीश्वरः कोऽपि किम् ।
इत्युत्पन्नविकल्पजल्पमुखरैराभाष्यमाणा जनै-
र्न क्रुद्धाः पथि नैव तुष्टमनसो यान्ति स्वयं योगिनः ॥९६॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

९६—काशीवास—योगीजन किसी के अनुपयुक्त कहने पर हर्ष अथवा रोष नहीं करते। (४)

कहै कोइ चण्डाल शूद्र, वा विप्र तपस्वी।
कहैं कोइ परमार्थ लगा योगीन्द्र मनस्वी॥
तर्क-वितर्क पूर्ण बातें नानाविध सुनते।
योगी करें न हर्ष, रोष स्वछन्द विचरते॥

क्या यह अन्त्यज है? अथवा जन्मना शूद्र और संस्कार उपनयन से ब्राह्मण इस प्रकार भिन्न-भिन्न दो जातियों वाला अर्थात् ब्राह्मण है? किंवा शूद्र है। या कोई तपस्वी है? अथवा यथार्थ वस्तु के वास्तविक विचारने में चतुर बुद्धि वाला कोई योगीश्वर है क्या? इस प्रकार मन में उठे सन्देहों को कहने में ढीठ अर्थात् मन की संदेहात्मक स्थिति को निःसंकोच हो कहने वाले लोगों से कहे गये योगीगण मार्ग में चण्डाल आदि कहने से न क्रोध में आने वाले और योगीश्वर आदि कथन से न प्रसन्नचित्त होनेवाले होते हुए स्वयं स्वेच्छा से विचरा करते हैं॥९६॥

हिंसाशून्यमयत्नलभ्यमशनं धात्रा मरुत्कल्पितं
व्यालानं पशवस्तृणाङ्कुरभुजस्तुष्टाः स्थलीशायिनः
संसारार्णवलङ्घनक्षमधियां वृत्तिः कृता सा नृणां
तामन्वेषयतां प्रयान्ति सततं सर्वं समाप्ति गुणाः॥९७॥

९६—आत्मानुसंधान करते हुए जीवन बिताना उचित है।
भोजन हित सर्पों को विधि ने सुलभ पवन दिया हिंसाहीन।
तृण का अशन भूमि का सोना दिया उन्होंने पशुगण दीन॥
पर नर को दे दीना बुद्धी करे जीविका आप तलाश।
करते करते खोज कि जिसकी सद्गुण जाते सत्य विनाश॥
यथालाभ सन्तोष ही योगीजन को चाहिए।
वृत्ति अहिंसा में मुदित, ब्रह्मध्यान चित धारिये॥

विधाता ने सर्पों के लिए हिंसा के हित अनायास मिल सकने वाला भोजन पवन से बनाया अर्थात् वायुभक्षण से ही सर्प जीवित रहते हैं और गोप्रभृति पशु

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के वास्ते कोमल घास ही भोजन सौर अकृत्रिम भूमि ही शयन वनाया है जिनसे वे प्रसन्न रहते हैं। संसार-सागर को लाँघकर पार जाने में समर्थ वुद्धिवाले मनुष्वुों की वह प्रसिद्धि जीविका बनाई है। उस जीविका का सतत पता या खोज लगाने वाले मनुष्यों के सभी गुण समाप्त हो जाते हैं। आशय यह कि योगी को चाहिए कि अहिंसक वृत्ति द्वारा विधिवश प्राप्त वस्तु से प्रसन्न रह कर कहीं भी निवास करते हुए सांसारिक चक्कर में डालने वाले रज और तम गुणों से दूर होकर सर्वदा आत्मानुसन्धान करते हुए यावज्जीव संसार में टिके रहना चाहिए ॥९७॥

गङ्गातीरे हिमगिरिशिलाबद्धपद्मासनस्य
ब्रह्मध्यानाभ्यसनविधिना योगनिद्रां गतस्य ।
किं तैर्भाव्यं मम सुदिवसैर्यत्र ते निर्विशङ्काः
कण्डूयन्ते जरठहरिणाः स्वाङ्गमङ्गे मदीये ॥९८॥

९८—परब्रह्म का ध्यान—कब्रहम गङ्गातट पर हिमालय की कन्दरा
ब्रह्मध्यान के अभ्यास में योगनिद्रा को प्राप्त होंगे ? (१)
गङ्गातीर हिमालय कन्दर कब पद्मासन बैठूंगा।
ध्यान ब्रह्म अभ्यास नियम कर प्राप्त योगनिद्रा हूँगा ॥
क्या ऐसे शुभ दिखूं जब बूढे मृग आवेंगे।
शंका छोड़, रगड अपना अँग मेरा तन खुजलावेंगे ॥

श्री गङ्गाजी के तीर पर हिमालय पर्वत की चट्टान पर पद्मासन जमाने या लगाने वाले ब्रह्मोपासना के अभ्यास की क्रिया द्वारा योगनिद्रा अर्थात् निर्विकल्पक समाधि में पहुँचने वाले अर्थात् योगी ऐसे मेरे लिये उन दिनों से बढ़कर और क्या सुदिन होंगे ? जिनमें वे बूढ़े हरिण निर्भय होते हुए मेरे अङ्ग पर अपने अङ्ग को खुजलाएंगे, अर्थात् वे ही दिन मेरे लिए अहोभाग्य के हैं ॥९८॥

❀ जीर्णाः कन्था ततः किं सितममलपटं पट्टसूत्रं ततः किं
एका भार्या ततः किं हयकरिसुगणैरावृतो वा ततः किम् ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भक्तं भुक्तं ततः किं कदशनमथवा वासरान्ते ततः किं
व्यक्तज्योतिर्न वान्तर्मथितभवभयं वैभवं वा ततः किम् ॥

परब्रह्म का ध्यान—यदि परमात्मा की ज्योति से हृदय प्रकाशित नहीं हुआ तो सारा वैभव व्यर्थ है। (२)

छप्पय

कौन हानि गुदड़ी ओढ़े में पहिर पिताम्बर पाया क्या ?
नारि एक ही रही संग या नर हय गज सेवें तो क्या ?
बासी अन्न मिला अथवा अति उत्तम भोग उड़े तो क्या ?
धन-वैभव से रहे शून्य, या जग ऐश्वर्य मिले तो क्या ?
ब्रह्मज्योति प्रकाश यदि, जगा न हिरदे बीच।
तो भवभय का निविड़तम, कैसे नासै नीच ॥

पुरानी कथरी है तो उससे क्या ? श्वेत एवं स्वच्छ पट्टवस्त्र है तो उससे क्या ? एक ही स्त्री है तो उससे क्या ? घोड़े-हाथी के समूहों से घिरा है तो उससे क्या ? उतम चावलों का भात भोजन किया तो उससे क्या ? अथवा सायंकाल का खराब अन्न खाया तो उससे क्या ? यदि हृदय के अन्दर संसार के भय को रकरने वाली आत्मज्योति नहीं व्यक्त हो रही है तो वैभव से क्या प्रयोसेजन ?

पाणिः पात्रं पवित्रं भ्रमण परिगतं भैक्ष मक्षय्यमन्नं
विस्तीर्णं वस्त्रमाशादशकमचपलं तल्पमस्वल्पमुर्वी ।
येषां, निःसङ्गताङ्गीक रणपरिण तस्वान्तसन्तोषिण स्ते
धन्याः संन्यस्तदैन्यव्यतिक रनिकराः कर्म निर्मूलयन्ति॥९९॥

९९—परब्रह्म का ध्यान—विरक्त पुरुषों का जीवन धन्य है। (३)

शुद्ध पात्र है हाथ उन्हीं का भिक्षा का फल अक्षय भोजन।
वस्त्र विशाल दिशा पट धारें अचल सेज पृथ्वी आँगन ॥
संगहीनता में सन्तोषी दैन्य त्याग में वीर महान्।
परब्रह्म का ध्यान जमाये महासंयमी योग निधान ॥
भव बन्धन को काटते, जन्ममरण सह मूल।
उन्हें धन्य हम मानते करें कर्म निर्मूल ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हाथ ही जिनका शुद्ध पात्र है और भ्रमण के द्वारा प्राप्त भिक्षा सम्बन्धी अविनाशी जिनका अन्न या भोजन है, दशों दिशाएँ जिनका विशाल वस्त्र है, और न हिलने-डुलने वाली अर्थात् स्थिर और महान् शय्या पृथ्वी है। सङ्गति का त्याग अर्थात् संगहीनता को स्वीकार करने से हृदय में सन्तोष धारण करनेवाले दीनता के सभी सम्बन्धियों को त्यागने वाले वे धन्य अर्थात् महात्मा धाराप्रवाह द्वारा प्राप्त जन्म-परम्परा को देने वाले कर्म का समूल नाश करते हैं ॥९९॥

❀ त्रैलोक्याधिपतित्वमेव विरसं यस्मिन्महाशासने
तल्लब्ध्वासनवस्त्रमानघटने भोगे रतिं मा कृथाः।
भोगः कोऽपि स एक एव परमो नित्योदिता जृम्भते
यत्स्वादाद्विरसा भवन्ति विषयास्त्रैलोक्यराज्यादयः ॥

परब्रह्मका ध्यान–ब्रह्मसुख के आगे तीनों लोकों का राज्य फीका है। (४)

जीव, प्राप्त कर ब्रह्मज्ञान को है इच्छा उज्ज्वल नीकी।
पाकर ज्ञान हृदय में भासै सम्पत्ति तीन लोक फीकी॥
आसन, वस्त्र, मान भोगों से प्रीति क्यों बिरथा जोड़े।
ब्रह्मज्ञान जो स्वाद पाय नहिं विषयों से नाता तोड़े॥

जिनके पाने पर त्रैलोक्य का आधिपत्य विरस लगता है, उसको पाकर आसन वस्त्र, सम्मान आदि प्राप्त करने एवं उनके भोग में रति मत करो। वस्तुतः वही एक नित्य उदीयमान परम भोग है कि जिसका आस्वादन ले लेने पर त्रैलोक्य के राज्यादि विषय-भोग फीके लगने लगते हैं।

❀ मातर्मेदिनि ! तात मारुति ! सखे तेजः सुबन्धो जल !
भ्रातर्व्योम ! निबद्ध एष भवतामन्त्यः प्रणामाञ्जलिः।
युष्मत्सङ्गवशोपजातसुकृतस्फारस्फुरन्निर्मल-
ज्ञानापास्तसमस्तमोहमहिमा लीने परब्रह्मणि ॥१००॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१००–परब्रह्म का ध्यान–निर्मल ज्ञान से मोह की महिमा दूर हुई। अब हम परब्रह्म में प्रवेश कर रहे हैं। (५)

पृथ्वी माता, पवन पिता, हे जल सुबन्धु, अग्ने मम मीत।
नभ भाई, तुम सबको अन्तिम, है प्रणाम करबद्ध विनीत॥
संग तुम्हारे सुकृत कमाये तिनसे निर्मल ज्ञान गहे।
ज्ञान मिटाई मोह प्रबलता परब्रह्म अब समा रहे॥

श्री गोस्वामी तुलसीदासजीने पञ्चमहाभूतों को चौपाई के भाग में इस प्रकार संगृहीत किया है कि "छिति जल पावक गगन समीरा।" शरीर प्रायः इन पंच तत्वों के मिश्रण से बनता है। जीवन्मुक्त होने के लिए देहादि का अभिमान त्यागना पड़ता है। अतः कविवर उन पंच महाभूत तत्वों को संबोधन करते हुए कहता है कि—हे माँ पृथ्वी ! हे पिता वायु ! हे मित्र अग्नि ! हे सुबन्धु जल ! तथा हे सहोदर भाई आकाश ! आप लोगों को यह मेरी अन्तिम प्रणामाञ्जलि है अर्थात् अन्त में मैं आप लोगों को प्रणाम करता हूँ। क्योंकि आप लोगों की सङ्गति के कारण उत्पन्न पुण्य से प्राप्त विस्तृत और निर्मल ज्ञान द्वारा समस्त अज्ञान-परम्परा का नाश करता हुआ परब्रह्म में लीन हो रहा हूँ ॥१००॥

❀ शय्या शैलशिला गृहं गिरिगुहा वस्त्रं तरुणां त्वचः
सारङ्गाः सुहृदो ननु क्षितिरुहां वृत्तिः फलैः कोमलैः
येषां निर्झरमम्बुपानमुचितं रत्यै तु विद्याङ्गना
मन्ये ते परमेश्वराः शिरसि यैर्बद्धो न सेवाञ्जलिः॥

परब्रह्म का ध्यान—ज्ञानवान् पुरुष ईश्वरतुल्य है। (६)

जिनका पलँग शिला गिरिवर की, भवन गुफा, वल्कल के वस्त्र।
भोजन कोमल फल वृक्षों के, जल निर्झर का पेय पवित्र॥
विद्याध्ययन परमप्रिय वनिता, हरिण मित्र विचरें भूधर।
लालचवश जे करहि न विनती, तिनमें देखूँ परमेश्वर॥

जिन लोगों की शय्या—शैल की शिला, गृह–पर्वत की गुफा, वस्त्र— वृक्षों की छाल, मित्र–हरिण, भोजन–वृक्षों के कोमल फल, जलपान—झरने का जल,

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रति के लिये स्त्री ब्रह्मविद्या है और जिन्होंने अञ्जलि बाँधकर सिर से किसी का सेवा-भार ग्ररण नहीं किया है, मैं उन्हीं को परमेश्वर (सम्राट्) समझता हूँ।

❀ धैर्य्यं यस्य पिता क्षमा च जननी शान्तिश्चिरं गेहनी
सत्यं मित्रमिदं दया च भगिनी भ्राता मनःसयमः।
शय्या भूमितलं दिशोऽपि वसनं ज्ञानामृतं भोजनं
ह्येते यस्य कुटुम्बिनो वद सखे कस्माद्भयं योगिनः॥

परब्रह्म का ध्यान—योगी का कुटुम्ब और भय-रहित जीवन। (७)
मातु क्षमा है, पिता धैर्य, अरु शान्ति सदा की तिरिया।
सत्य मित्र है, दया बहिन, अरु मन संयम सा भइया॥
पृथ्वी विस्तृत पलँग बिछा है दश-दिश कपड़े सुन्दर।
ज्ञानामृत का भोग रहा उड़ श्वास श्वास के अन्दर॥
ऐसा पूर्ण कुटुम्ब है, कभी रही ना कोय।
फिर किससे किस बात का, योगी को भय होय?

जिसके पिता—धैर्य, माता—क्षमा चिरकाल तक साथ देनेवाली स्त्री—शान्ति, मित्र—सत्य, भगिनी—दया, भाई—मन का संयम, शय्या—भूमि का तल, वस्त्र—दिशायें और भोजन ज्ञान का अमृत के समान रसास्वादन है हे मित्र! कहो तो भला, जिस योगी पुरुष के ये सब कुटुम्ब हैं उसको किससे भय रहेगा अर्थात् किसी से भी नहीं है।

❀ अहौ वा हारे वा बलवति रिपौ वा सुहृदि वा।
मणौ वा लोष्ठे वा कुसुमशयने वा दृषदि वा।
तृणे वा स्त्रैणे वा मम समदृशो यान्ति दिवसाः
क्वचित्पुण्यारण्ये शिव-शिव-शिवेति प्रलपतः॥

इति श्रीभर्तृहरिकृत वैराग्यशतकं समाप्तम्॥

Sri Sankaracharya Sanskrit Mahavidyalaya
V32

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

परब्रह्म का ध्यान—मेरे दिन भोग में अथवा योग मे शिव-शिव कहते व्यतीत हों। (८)

छप्पय

हार विजय का कण्ठ बीच, या नाग पड़ा हो।
बली शत्रु हो निकट कि प्यारा मित्र खड़ा हो॥
हाथ रत्न बहुमूल्य, कि हो मिट्टी की बटिया।
फूलों की हो सेज, कि हो पत्थर की शय्या॥
तृण पर अपना शयन हो, ललनाओं में या रहूँ।
पुण्य क्षेत्र प्रति दिवस मैं, शिव-शिव-शिव मुख से कहूँ॥

सर्प या हार में बलवान शत्रु या मित्र में, मणि या मिट्टी के ढेले में फूलों की शय्या या पत्थर की शिला में, तृण की पुतली या स्त्री के रूप में समान भाव से दृष्टि रखते हुए किसी पवित्र वन, में कहीं पर शिव-शिव-शिव ऐसा उच्चारण करते हुए मेरे दिन व्यतीत हों।

भर्तृहरिकृत- शतकत्रयान्तर्गत -वैराग्यशतक का हिन्दी भावार्थानुवाद समाप्त

अनुवादक की प्रार्थना

किया भर्तृहरि मनन उन्हीं के चरण कमल भजि।
अमृत रस का लिया स्वाद मद मोह विषय तजि॥
राधेलाल त्रिवेदी ने अनुवाद बनाया।
रची तोतली तुकबन्दी आशय प्रगटाया॥
शङ्कर से प्रार्थना, हो प्रचार सदग्रन्थ महि।
बनें देवता नरन सो भर्तृहरि की सीख गहि॥

दोहा

संवत् गुण भू खं नयन, चैत्र कृष्ण रविवार।
श्रेष्ठ द्वितीया को कियो, अर्पण शम्भु दुवार॥

❀ शुभम् भूयात् ❀

Sri Sankaracharya ... Mahavidyalaya ... India
832
Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१ रघुवंशमहाकाव्यम् प्र० सर्ग। 'चन्द्रकला' सं० हि० व्या०—शेषराजशर्मा ३–००

२ रघुवंशमहाकाव्यम् । 'विमला' संस्कृत-हिन्दीव्याख्या । श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी
द्वितीय ३-२५, तृतीय ३-००, ४-५ ६-००, ६-७ ६-००, १३-१४ ६–००

३ हितोपदेश : मित्रलाभ । 'चन्द्रकला' सं० हि० टीका—श्रीशेषराजशर्मा ६–५०

४ लघुसिद्धान्तकौमुदी । 'शिवाख्य' सं० हि० टीका—गोमतीप्रसादशास्त्री १२–००

५ तर्कसंग्रह—पदकृत्य । हिन्दीटीकासहित—श्रीशेषराजशर्मा 'रेग्मी' ५–००

६ कुमारसम्भव । 'विमला' संस्कृत-हिन्दीटीका—पं० श्रीकृष्णमणित्रिपाठी
१–२ सर्ग ५–५० तृ० सर्ग ३–०० प० सर्ग २–२५ पञ्चमसर्ग ३-२५

७ स्वप्नवासवदत्ता । 'चन्द्रकला' सं० हि० टीका—श्रीशेषराजशर्मा 'रेग्मी' १०–००

८ नीतिशतकम् । 'विमला' संस्कृत–हिन्दीव्याख्योपेतम्–कृष्णमणित्रिपाठी ५–५०

९ छन्दोमञ्जरी । (प्रमाणिक-संस्करण) । 'सुषमा'-'सकला' संस्कृत-
हिन्दी व्याख्या युक्त । व्याख्याकार—डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी ८–००

१० काव्यमीमांसा । 'विमला' संस्कृत-हिन्दी टीका । १–५ अध्याय ४–५०

११ पञ्चतन्त्र । अपरीक्षितकारक । 'विमला' सं०हि०टीका । कृष्णमणित्रिपाठी ६–५०

१२ संस्कृत व्याकरणम् । (अनु० खण्ड-निबन्धखण्ड सहित)-पं० रामचन्द्र झा १५–००

१३ सांख्यकारिका । 'सांख्यप्रकाश' सं०हि० टीका । श्रीकृष्णमणित्रिपाठी १०–००

१४ वेदान्तसार । 'भावबोधिनी' सं० हि० टीका—श्रीरामशरणत्रिपाठी ९–००

१५ मेघदूत । 'चन्द्रकला' सं० हि० टीका—श्रीशेषराजशर्मा 'रेग्मी' १४–००

१६ अनुवादचन्द्रिका । (सर्वांगपूर्ण संस्करण) । डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी १५–००

१७ दशरूपक । 'चन्द्रकला' हि० टीका सहित—डॉ० भोलाशंकर व्यास २०–००

१८ साहित्यदर्पण । 'शशिकला' हिन्दीटीका १-६ परि० ३५-००, ७–१० परि २०–००

१९ काव्यप्रकाश । 'चन्द्रकला' हिन्दी टीका—डॉ० सत्यव्रत सिंह ४०–००

२० भट्टिमहाकाव्य । सान्वय संस्कृत-हिन्दीव्याख्यासहित । श्रीगोपालशास्त्री
'दर्शनकेशरी' १–४ सर्ग १०–००, ५–८ सर्ग १०–०० एवं १४–२२ १५–००

२१ नैषधमहाकाव्य । 'चन्द्रकला' संस्कृत-हिन्दी व्याख्या सहित । श्रीशेषराजशर्मा
प्र० सर्ग ८–०० १-३ सर्ग १८–०० १-५ सर्ग २७–०० १-९ सर्ग ४५–००

२२ किरातार्जुनीयम् । 'विजया' संस्कृत-हिन्दी व्याख्या, परीक्षोपयोगि संस्करण ।
डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी । द्वि० सर्ग २–२५ ३–६ सर्ग ७–००

२३ दशकुमार-पूर्वपीठिका । परीक्षापयोगि 'विमला' संस्कृत-हिन्दी व्याख्या सहित
व्याख्याकार—पं० श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी ६–००

२४ प्रस्तावरत्नाकर । परीक्षोपयोगि निबन्धसंग्रह । डॉ० ब्रह्मानन्दत्रिपाठी ७–५०

२५ लघुसिद्धान्ताध्यायीसूत्रपाठ । सम्पा० श्रीगोपाल शास्त्री 'दर्शनकेशरी' ६–००

Funding by IKS-MoE